. . . इस पुस्तिका में विनोबाजी के जीवन और विचारों के संबंध में अच्छी झांकी मिलती है। वर्णन रोचक और भावपूर्ण है, क्योंकि इसका आधार लेखिका की विनोबाजी के प्रति आन्तरिक श्रद्धा और आत्मीयता है।

विनोबा बहुत गहरे चिन्तक हैं, और प्रात:-काल के शान्त समय में विचारों को विशेष स्फूर्ति मिलती है, अतः उनके चिन्तनस्वरूप इन पत्रों में इन विचारों का संकलन विशेष मूल्य की वस्तु है। साथ ही उनके विचारों का केन्द्र-बिन्दु बराबर सर्वोदय-कार्य और ग्राम-सेवा रहा है। उनका दर्शन और चिन्तन भी हम इसमें पाते हैं।

जिन्होंने विनोबाजी के साथ थोड़ा समय भी गुजारा है, वे जानते हैं कि किस प्रकार उनकी वाणी से बराबर ज्ञान की धारा प्रवाहित होती रहती है। बहिन ज्ञानवती दरबार ने ठीक ही उसे ज्ञान-गंगा कहा है, और यह सौभाग्य है कि उस निर्मल धारा में से कुछ अंजलियां संचित कर उन्होंने हम सबके सामने रख दिया है। इसके लिए विदुषी लेखिका का हमें आभार मानना चाहिए।

—जयप्रकाश नारायण

लेखिका
डा० ज्ञानवती दरबार

प्रस्तावना
डा० राजेन्द्रप्रसाद
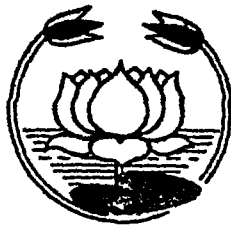
१९६२
रंजन-प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रकाशक : रजन-प्रकाशन,
७५, थियेटर कम्यूनिकेशन बिल्डिंग,
कनाट प्लेस
नई दिल्ली

संस्करण : तृतीय संस्करण : १९६२

मूल्य : अढाई रुपये

मुद्रक : नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
१०, दरियागंज
दिल्ली

प्रकाशकीय

विनोवा और उनका भूदान-आदोलन बीसवी सदी की ऐसी क्रातिकारी घटना है, जिसने सामान्य जनता तथा प्रबुद्ध मस्तिष्को को एक साथ आर्कषित किया है। इस सबध मे बहुत-सा साहित्य पिछले दशक मे प्रकाशित हो चुका है और हो रहा है। परन्तु उपलब्ध साहित्य में अधिकाश ऐसा है, जिसमे भूदान-यज्ञ का सैद्धातिक पक्ष उभरा है और जिसमे विनोबा के विचारक रूप के ही दर्शन होते हैं।

अभी ऐसे साहित्य की कमी है, जिसमे विनोबा की प्रकृति, उनके दैनिक जीवन-क्रम तथा छोटी-से-छोटी बात पर उनके मौलिक दृष्टिकोण पर प्रकाश पडता हो। प्रस्तुत पुस्तक द्वारा इसी अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक की लेखिका राष्ट्रपति की निजी सचिव है, यह बात विशेष नही है, विशेप बात है उनका विनोबा के प्रति आत्मीयता से सराबोर पूज्यभाव और उनका निकट-सान्निध्य। वह विनोबा के साथ चादील मे एक मास रही तथा उन्होने तिथि-क्रम से जो डायरी रक्खी है, वही इस पुस्तक का विषय है।

पुस्तक मे विविध विपयो पर विनोवा के विचारो के अतिरिक्त उनके ऐसे रूप की झाकी मिलती है, जो अन्यत्र उपलब्ध नही है। विचारो और भावनाओ से समन्वित यह पुस्तक सहज पठनीय हो गई है।

आशा है, विनोबा के स्वभाव और विचारो पर प्रकाश डालनेवाली इस पुस्तक का स्वागत होगा।

तृतीय संस्करण

कुछ ही महीनो मे पुस्तक का तृतीय सस्करण पाठको के सामने प्रस्तुत करते हुए हमे खुशी होती है। पुस्तक की इस लोकप्रियता से हमे प्रोत्साहन मिला है। इसके लिए हम अपने गुणी पाठको के कृतज्ञ है।

हमारा विश्वास है कि पुस्तक उत्तरोत्तर पाठको मे और भी लोकप्रिय होती जायगी।

१५ अगस्त, १९६१ —संचालक

निवेदन

सन १९५३ की बात है जब पूज्य विनोबा बहुत बीमार हुए थे, और उन्हीके शब्दो मे "एक प्रकार से यमराज का दरवाजा" खड़-खड़ा आये थे, तब भी वहां खड़े बाबा अडिग थे कि दवा नही लेंगे। यह सबकुछ देखकर और जानकर सभी का चिन्तित होना स्वाभाविक था। जब किसीकी न चली तो पूज्य राजेन्द्रबाबू दिसम्बर में उन्हे देखने गये और पूरे स्नेह-भाव और श्रद्धा से उन्होने बाबा से दवा लेने का आग्रह किया। जो स्वय भावना और श्रद्धा का मूर्तरूप हो, उसके आग्रह को टालना कठिन था। इस स्नेह-भावना के आगे जिद नम्रभाव से झुक गई और बाबा ने दवा लेना आरम्भ किया। देश ने सतोष की एक सांस ली। मै यह सब देखकर विह्वल होती। बाबा का स्नेह मैंने अपने गृहस्थ-जीवन के आरम्भ से ही पाया है और उस नवजीवन में उनके आशीर्वाद के साथ ही पदार्पण किया है। अपने नये जीवन मे सास और श्वसुर दोनों के ही स्नेह से मै वन्चित रही। नौ महीने की उम्र में ही मा-बाप दोनों की गोदी खोकर बाबा के 'बुद्धि'[1] ने बचपन में ही काकाजी (स्व० जमनालालजी बजाज) के कारण बाबा की गोद पा ली थी इसलिए मुझे अनायास ही एक ऐसे महापुरुष बाबा के रूप में मिल गये, जिनका सहज प्यार मै आरम्भ से ही पा सकी। इसी सम्बन्ध के कारण मैं बाबा के पास जाने को अकुला रही थी। जब राजेन्द्रबाबू जनवरी मे दिल्ली वापस आये तो मैंने विनोबा के

१. श्री [illegible], जिन्हें बाबा प्यार से 'बुद्धि' कहकर पुकारते हैं।

पास जाने की इच्छा व्यक्त की और उन्हीकी कृपा से मुझे बाबा के पास जाने और रहने का सुयोग मिल गया।

स्थिति यह थी कि बाबा ने बीमार रहते हुए भी अपनी पार्टी के सब लोगों को भूदान के काम के लिए स्थान-स्थान पर भेज दिया था। उनके पास केवल महादेवी ताई थी, जो सदा उनकी सेवा मे रहती थी। ऐसे समय मै उनके पास पहुच गई और पूरे एक महीने के लिए बाबा के चरणो मे रह सकी। बीमारी के कारण ही बाबा चादील मे स्थिर थे और उनकी पदयात्रा अभी स्थगित थी। बाबा इस कमजोरी मे भी इतना काम कर लेते थे कि देखकर आश्चर्य होता था। उनका अध्ययन-चिन्तन उसी नियम से प्रातः तीन बजे आरम्भ हो जाता था। मेरे लिए तो वह समय ऐसा था मानो ऋषि-मानस से बहती ज्ञान-गगा के तट पर बैठी मै ज्ञानामृत का पान कर रही हू। इसी अविरल बहती धारा मे से मै जो कुछ भी सचय कर सकती, करने का यत्न करती, और डायरी के ये पन्ने उसीका सचय-मात्र है। इस छोटी-सी 'गागर' मे बाबा के ज्ञान-सागर को भरना मेरे लिए कठिन ही नही असम्भव बात थी। मैने तो गगाजल की एक अजलि की तरह इसे अपने पास रखने के लिए भर लिया। यहा आने पर कुछ स्नेही स्वजन इस 'गंगाजल' मे से थोडा-थोडा हिस्सा चाहने लगे और मदालसा दीदी ने मुझसे आग्रह किया कि इसका वितरण मै इस तरह करू ताकि अधिक-से-अधिक व्यक्तियो को यह मिल सके। बस, उसी आग्रह की यह प्रत्यक्ष स्वीकृति है। यह मेरे ज्ञान का नही, केवल भाव का दर्शन है। आज इस भाव को बाटकर मुझे खुशी हो रही है।

बाबा के चरणो मे बैठकर इस ज्ञानामृत का पान करते हुए मै

आसपास के दृश्य को भी थोडा-बहुत देख सकी। चांदील का वह स्थान मेरे लिए अवश्य देव-मंदिर बन गया था; पर बाबा ने तो जिस गांव में पदार्पण किया, वही देव-मदिर बन गया। इस देव-मदिर मे दीप्तिमान दिव्य ज्योति का प्रकाश आत्म-मंदिर में दीप्त हो रोम-रोम मे मानो उद्भासित हो उठता है । वस्तुत: बाबा के लिए तो सपूर्ण भारत ही एक भव्य मदिर है, जिसमे स्थित भारतमा की वह निशि-वासर वदना करते है। एक दिन सुबह घूमते समय एक भाई ने बाबा से पूछा था—"बाबा, आपका घर कहा है ?" और बाबा का सक्षिप्त उत्तर था—"देश के जिस कोने मे मै पैर रखता हू वही मेरा घर बन जाता है।" भगवान् वामन ने तीन पग धरे कि सारी पृथ्वी अपनी बना ली। विनोबा का तो अभी एक चरण ही पडा है कि सपूर्ण भारत पर उनकी आभा व्याप्त हो गई है और बाबा स्वय ध्यान-मग्न हो भारतमा की सतत सेवा मे लगे है।

पूज्य राजेन्द्रबाबू को साभार नमन करके, जिनके कारण मुझे यह सुयोग मिला, मै इस आत्मज्ञानी सत, प्रेमभक्त पुजारी और कर्मयोगी विनोबा के चरणो मे प्रणाम करती हू।

पाठको के लिए तो यह मेरा एक आत्मनिवेदन-मात्र है। हो सकता है, इसमे उन्हे कुछ असगतिया दिखाई दे। उनपर ध्यान न देकर केवल बाबा की मूल भावना और विचार ही ग्रहण करेंगे तो मै अपना प्रयत्न सार्थक समझूगी।

—ज्ञानवती दरबार

राष्ट्रपति-भवन,
नई दिल्ली
११ फरवरी, १९६१

विषय-सूची

विनोबा-स्तवन

सत विनोबा की वर वाणी,
यदि सुन सके द्विपद हम प्राणी;
तो देखेगे धरा वन गई उन्नत स्वर्ग समाना है।
देव कहेगे स्वय कि उनसे अच्छा नर का वाना है ॥

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

●

प्रेरणास्रोत स्वर्गीय काकाजी की
पुण्यस्मृति मे,
जिन्हे मैंने सदा
अमर स्मृतियो मे ही
देखा

●

राष्ट्रपति-भवन
नई दिल्ली

प्रस्तावना

इस पुस्तक के कुछ अध्याय मैंने पढे है और कुछ स्वय लेखिका से सुने है। विनोबाजी की भूदान-यात्रा के सबंध मे इन दिनो बहुत कुछ प्रकाशित हुआ है। उनके प्रवचनो के तो कई सग्रह छप चुके है। किन्तु उनकी दिनचर्या का आखो-देखा विवरण और सर्वोदयी कार्यकर्ताओ तथा विनोबा से मिलने आनेवालो के साथ उनकी बातचीत के सबध मे अधिक नही लिखा गया है। और फिर विनोबा के चादील-प्रवास के सबध मे तो जनसाधारण की जानकारी बहुत कम है। उस समय विनोबाजी अस्वस्थ थे, फिर भी शारीरिक दुर्बलता के वशीभूत न होकर वे किस प्रकार अपना काम यथापूर्व करते थे, यह एक बोधप्रद कहानी है। उनके गिरते हुए स्वास्थ्य की चिन्ता देश-भर को भले ही हुई हो, पर स्वय उन्हे इसका ध्यान कभी नही रहा, यहातक कि दवा खाने तक मे वे इनकार करते रहे। उस अवधि मे उनकी पद-यात्रा स्थगित थी, किन्तु उनका प्रात-भ्रमण बराबर जारी रहा। विनोबा बहुत गहरे चिन्तक है, और प्रात काल के शात समय मे विचारो को विशेष स्फूर्ति मिलती है, अत उनके चिन्तनस्वरूप इन पन्नो मे उन विचारो का सकलन विशेष मूल्य की वस्तु है। साथ ही उनके विचारो का केन्द्रबिन्दु बराबर सर्वोदय-कार्य और ग्राम-सेवा रहा है। उसका दर्शन और चिन्तन भी हम इसमे पाते है।

भूमिदान-आन्दोलन का हमारी आर्थिक स्थिति पर क्या प्रभाव पडा और उससे ग्रामीण जनता की स्थिति मे कहातक

सुधार हुआ, इस प्रश्न पर सभव है दो मत हो; किन्तु विनोबाजी के विशुद्ध आदर्श और उनकी वाणी के सत्प्रभाव से कोई इनकार नही कर सकता। आज की दुनिया मे वे सात्त्विकता और पारस्परिक सद्भावना के प्रतीक है। उनकी विशेषता यह है कि उनके आदर्श व्यावहारिकता से विलग नही। यही कारण है कि उनकी ऊची बात साधारण-से-साधारण ग्रामीण लोग भी समझ लेते है।

इस पुस्तिका मे विनोबाजी के जीवन और विचारो के सबध मे अच्छी झाकी मिलती है। वर्णन रोचक और भावपूर्ण है, क्योकि उसका आधार लेखिका की विनोबाजी के प्रति आन्तरिक श्रद्धा और आत्मीयता है। उसके परिवार का विनोबाजी के साथ घनिष्ठ सबध रहा है। उसके पति बुद्धसेन दरबार विनोबा के साथ वर्धा मे १४-१५ वर्ष रहे है। यही कारण है कि जब ज्ञान ने चादील जाने की इच्छा प्रकट की, मैने उसे खुशी से अनुमति दी। यह सतोष का विषय है कि ज्ञान ने इस अवसर से स्वय ही लाभ नही उठाया, बल्कि इस पुस्तक द्वारा औरो को भी इसके रसास्वादन का अवसर दिया।

६ अप्रैल, १९६१

राजेन्द्र प्रसाद

अपूर्व मिलन

: १ :
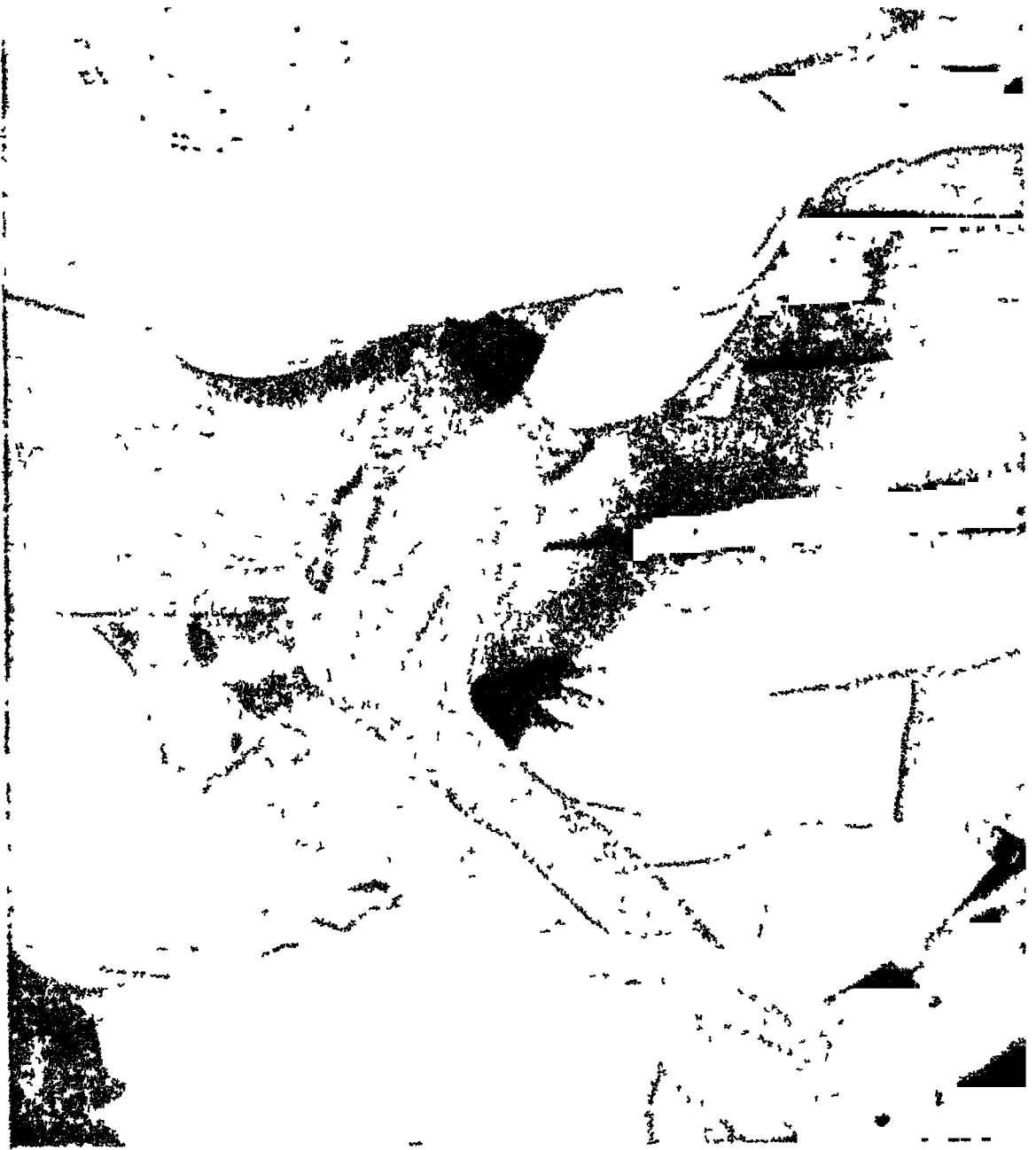
विनोबा के जीवन की कुछ झांकियां

बचपन और शिक्षा

महाराष्ट्र मे कुलाबा जिले के गागोदा नामक ग्राम मे ११ सितम्बर १८९५ को बालक विनोबा का जन्म हुआ। धन्य है वह माता, जिसने ऐसे लाल का लालन-पालन करते हुए प्रेम और भक्ति से इस फूल को सिंचित किया, जो विकसित होकर देश के हर कोने को अपने गुणो की सुवास से सुवासित कर रहा है।

भक्ति-भावना का अंकुर

अपने बचपन को याद कर विनोबा आज भी बडी भक्ति और श्रद्धा से अपनी मा को याद करते है। चादील मे जब मै उनके साथ थी, तो उन्होने अपनी भक्तिमयी मा का स्मरण करते हुए मुझे सुनाया था कि किस तरह बचपन से ही उन्हे अपनी मा से भक्ति का वरदान मिला। उन्होने कहा था, "जब मै छोटा था तो मेरी मा रोज मुझे तुलसी में पानी देने को कहती थी। तुलसी मे पानी दिये बिना मुझे कुछ खाने-पीने को नही मिलता था। वह पूछती थी, 'कारे विन्या, तुलसीला पाणी घातले का ?' छोटा-सा काम था, पर उससे मुझमे भक्तिभाव आया। कई माताए भी ऐसी होती है, जो छोटी-छोटी बातो से बच्चे के मन और जीवन मे सद्भाव और सद्गुण पैदा करती है। नित्य-नियमित रूप से थोडा और छोटा-सा काम करने पर भी जीवन पर उसका बडा असर होता है।" और यह सच है। कितनी ममता और भक्ति से विनोबा अपनी मां को याद करते है! उनके हृदय मे भक्ति-भाव का अमृतसिंचन उनकी मा ने ही किया है। विनोबा कहते भी थे कि उनकी मा बड़ी ही भक्तिमयी थी। ये गुण उनके भाइयो मे भी आये है। विनोबा ही नही, उनके छोटे भाई बालकोवा और शिवाजी भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा भगवान के भक्त है। ये गुण और भाव तो उनमे मा के पालन-पोषण और वात्सल्य से सिंचित, अकुरित और विकसित हुए है। विनोबा

ने कहा था—"कई माताए भी ऐसी होती हैं।" उन्होने यह भी कहा, "बच्चो को भी अपने पूर्व-जन्म के अनुसार वैसे माता-पिता मिलते हैं।" उनकी मा ने नियमित रूप से तुलसी में पानी देने का आग्रह रक्खा, जिससे इन्हे भक्तिभाव मिला। वस्तुत बच्चे के चरित्र-निर्माण मे माता का कितना बडा हाथ होता है, यह मैंने इस एक छोटी-सी बात से ही देखा और इस तरह सत विनोबा ने बचपन मे ही भक्ति का अमृत-पान किया।

भ्रमण में रुचि

बचपन से ही विनोबा को घूमने-फिरने का अत्यधिक शौक रहा। बाल्यावस्था मे अपने गाव के आस-पास की पहाडिया, खेत, नदी-नाले आदि कोई ऐसा स्थान न था, जहा वह अनेक बार न जा चुके हों। वह अकेले ही नही घूमते थे, सग मे अपने बालसाथियो को भी खीच-खीचकर घूमने ले जाया करते थे। किसी भी विद्यार्थी को पुस्तक में माथापच्ची करते देख उन्हे दया आती और वह उससे पुस्तक छीनकर उसे खुली हवा मे घूमने ले जाते।

अद्भुत विद्यार्थी

पाठ्यक्रम की पुस्तको के बजाय बालक विनोबा को आध्यात्मिक पुस्तको के अध्ययन का अधिक शौक था। तुकाराम-गाथा, ज्ञानेश्वरी, दासबोध, ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य, गीता आदि को न मालूम कितनी बार उन्होने पढा होगा, पर इन पुस्तको का अध्ययन करते हुए भी स्कूल में किसी विद्यार्थी से पीछे न थे। स्कूल में आखिरी बैंच पर बैठने की उनकी आदत थी और वह सिर्फ इसलिए कि जब भी जी चाहे, उठकर आसानी से बाहर जा सके। जितनी भी देर वह क्लास मे बैठते, ऐसा स्थान चुनकर बैठते थे, जहा से बाहर का स्वच्छ आकाश आसानी से दिखाई देता रहे।

जब विनोबा पाचवीं-छठी कक्षा में थे तो सहपाठी उनके घर सीखने आया करते थे, पर बाद में उनकी बुद्धिमत्ता तथा शिक्षण-शैली का प्रभाव अन्य विद्यार्थियों पर इतना पड़ा कि उनसे ऊंची कक्षा के विद्यार्थी भी उनके पास सीखने और पढ़ने आने लगे। यहा तक कि कई बार तो स्वय

अध्यापक भी शका-समाधान के लिए उनके पास आते थे। गणित मे विनोवा को विशेष रुचि रही। वह कई वार मजाक मे कहा करते है कि अध्यात्म-शास्त्र के वाद अगर किसी शास्त्र मे मेरी रुचि है तो वह गणितशास्त्र मे।

गर्मियो की छुट्टियो मे विनोवा भ्रमण-आदि के लिए किसी शीतल स्थान पर या किसी कुटुम्वीजन के यहा न जाकर सहसा किसी सहपाठी मित्र की सेवा करने जा पहुचते थे और उसकी सेवा-शुश्रूषा मे ही अपनी छुट्टिया व्यतीत करते थे। इसी सेवा के आकर्षण तथा आध्यात्मिक प्रभाव से अनेक सहपाठी आज भी उनके साथ उनकी आज्ञा के अनुसार रचनात्मक कामो मे लगे है। उन्हीके कारण एक-दो सहपाठियो ने ऊची डिग्रियो का मोह तक छोड दिया और कालेज से निकलकर देश-सेवा के काम मे लग गये।

विनोवा को डिग्रियो का मोह नाम-मात्र को भी नही था। उन्होने अनासक्त भाव से अपनी सभी सार्टिफिकेटो को अग्नि की भेट चढा दिया था और उनसे निकलती लौ की ओर इगित करते हुए अपने मित्रो से कहा था, "देखो, ये कैसे प्रकाशित हो रहे है।"

हिमालय की ओर

आध्यात्मिकता की ज्योति वाल्यकाल से ही उनके हृदय मे जल रही थी और एक दिन ऐसा आया कि उनमे हिमालय जाने की इच्छा वलवती हो उठी। उन्होने अपना यह निश्चय अपने साथियो को वताया। फिर क्या था, तीन-चार साथियो के साथ वह निकल पडे। कुछ समय काशी मे रुके। वहा एक स्कूल मे पढाने का काम किया। पढाने के पारिश्रमिक-स्वरूप रोज के दो पैसे वह लेते थे, जिसमे से एक पैसे की शकरकद तथा एक पैसे का दही लेकर सतुष्ट रहते। पढाने के वाद शेष समय मे गगा के तीर पर बैठकर श्लोको की रचना करते और शाम को वे सारे श्लोक गगामैया को अर्पित कर देते। उनके साथियो मे से एक का नाम भोला था। विनोवा का वह पक्का भक्त था। हर कोई जानता था कि विनोवा विना परिश्रम किये खाना पसन्द नही करते। अत वह भी चाहे लकडी काटना, लकड़ी ढोना आदि काम ही क्यो न करना पडे, शारीरिक श्रम अवश्य करता था। आज भी यह वात विनोवा के जीवन मे है। उन्होने इसे अपना

एक सिद्धान्त ही नही माना है, किन्तु आश्रम मे भी इसका सतत प्रयोग किया है।

विनोबा के मन में आध्यात्मिक प्रेम के साथ-साथ देशप्रेम की भावना भी हिलोरें मारा करती थी। देश की गुलामी का खयाल उन्हें हमेशा सताया करता था। उस समय देश की आजादी के लिए किसीके सामने कोई खास कार्यक्रम नही था। कुछ इक्के-दुक्के नौजवान हिंसा का आश्रय लेकर देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करते थे। विनोबा ने भी देश की आजादी के लिए उस वृत्ति को अपनाना चाहा, पर हिंसक प्रवृत्ति मे आनेवाली असत्यता का विनोबा के आध्यात्मिक विचारो से मेल नही बैठा। देश को परकीय दासता से मुक्त करने की छटपटाहट उनके दिल को कचोटती रही।

बापू की ओर आकर्षित

उस समय देश मे एनी बेसेण्ट, तिलक तथा गाधीजी का नाम काफी प्रसिद्ध था। अपनी शकाओ के सम्बन्ध में विनोबा ने इन तीनों नेताओं को पत्र लिखे। उत्तर में किसीकी ओर से अच्छे से लेटर-पैड पर, तो किसीकी ओर से सजी हुई भाषा मे सविस्तर उत्तर आये; पर गाधीजी की ओर से जो उत्तर आया उसने विनोबा को सहज आकर्षित कर लिया। उनका पत्र किसी चिकने विदेशी लेटर-पैड पर नही, वरन् वेस्ट पेपर का उपयोग करने के हेतु फटे-पुराने कागज पर काली स्याही से मोटे-मोटे अक्षरो में लिखा हुआ था। पत्र का मजमून तो विचारयुक्त था ही, पर अन्य बातें भी शिक्षाप्रद थी। रद्दी कागज, काली स्याही, कलम से लिखे मोटे-मोटे अक्षर भी एक खास सदेश सुना रहे थे। पत्र के भावार्थ के अलावा भी इस विशेष सदेश को विनोबा की कुशाग्र बुद्धि ने जाना। उन्होंने उसके बाद तीन-चार बार गांधीजी से पत्र-व्यवहार किया। आखिर में गाधीजी ने समझ लिया कि विनोबा की तर्कशील शकाओ का पूरा समाधान दूर बैठकर पत्र लिखने-भर से नहीं होगा। उन्होंने विनोबा को लिख दिया, "मैं यहां सत्य के प्रयोग कर रहा हू, तुम यहा चले आओ। यहा शायद तुम्हारी शंकाओ का समाधान हो जायगा।"

इसी बीच बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी के शिलान्यास के अवसर पर दिया हुआ गाधीजी का पहला भाषण भी विनोबा ने सुना। उसका भी उनके मन पर बहुत गहरा असर पडा। हिमालय की कन्दराओ मे जाकर अध्यात्म-साधना करने के पुराने तरीके से कही अधिक गीता मे बताये हुए कर्मयोग का समाज मे रहकर प्रत्यक्ष प्रयोग करने वाले बापू के विचारो ने विनोबा को आकर्षित किया और इसी कारण बापू के निमत्रण पर विनोबा साबरमती-आश्रम गये।

साबरमती में

आश्रम मे पहुचने पर विनोबा को खेती का काम सौपा गया। वह नित्य-नियमित रूप से आठ घटे मौनपूर्वक कई महीने तक काम करते रहे। उनकी मनोवृत्ति के कारण आश्रम के कुछ लोग तो उन्हे गूगा ही समझते थे।

एक बार सध्या के समय काम करने के पश्चात् साबरमती के किनारे मैदान मे दूर जाकर विनोबा वेद-मत्रो तथा उपनिषद्-वचनो का उद्घोष कर रहे थे। उसी समय अहमदाबाद-कालेज से गुजरात-विद्यापीठ की ओर जाते हुए कुछ कालेज के विद्यार्थियो ने देखा कि आश्रम का कोई आदमी इतने शुद्ध उच्चारण के साथ उपनिषदो का पारायण कर रहा है, तो उन्हे लगा कि अवश्य ही यह कोई विद्वान् है। दूसरे दिन वे विद्यार्थी आश्रम मे एक सज्जन के पास गये और कहा कि हमे उस आदमी से सस्कृत सीखनी है। आश्रम के प्रतिष्ठित सज्जन हँसकर बोले, "अरे भाई, उससे सस्कृत क्या सीखोगे, वह तो गूगा आदमी है।" इसपर विद्यार्थी हँसे और बोले, "नही ऐसी बात नही है। वह कल शाम ही साबरमती के मैदान मे बैठे उपनिषदो का उद्घोष कर रहे थे।" इसपर आश्रमवासी भाई को आश्चर्य हुआ और उन्होने बगीचे में, जहा विनोबा कुदाली लेकर काम कर रहे थे, उनसे जाकर पूछा कि ये विद्यार्थी आपसे सस्कृत सीखना चाहते है। विनोबा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इस प्रकार गूगे विनोबा आचार्य विनोबा बन गये।

वर्धा-आश्रम की स्थापना

कुछ समय के बाद गाधीजी की आज्ञा लेकर एक साल तक विनोबा

ने महाराष्ट्र का भ्रमण किया और ठीक एक साल के बाद वह पुनः साबरमती-आश्रम में चले आये। स्व० जमनालालजी बजाज ने वर्धा में आश्रम खोलने की अपनी इच्छा बापू के सामने प्रकट की तथा विनोबा को उनसे मागा। बापू ने स्वीकृति दे दी और इस तरह विनोबा को वर्धा आना पड़ा।

दृढ-निश्चयी

सन् १९२१ में सत्याग्रह-आश्रम, वर्धा की स्थापना हुई। आश्रम में विनोबा के कई बाल-साथी भी आकर रहने लगे। आश्रम की इमारते बनते समय कुए के लिए जगह स्वय विनोबाजी ने ही पसन्द की। जानकार लोगो ने कहा कि यहा पानी निकलना मुश्किल है, पर विनोबा ने कहा कि चाहे कितना ही गहरा क्यो न खोदना पडे, कुआ यही खोदा जायगा। मजदूरो के साथ-साथ स्वय आश्रमवासियो ने भी कुआ खोदने मे सहायता की। आखिर पत्थर की चट्टानें फोडकर नब्बे हाथ पर पानी निकला, जबकि आसपास के अन्य सब कुए बीस-पच्चीस हाथ ही गहरे होंगे। कुआ खोदते समय पानी निकलता हुआ न देखकर कइयो ने कुए के लिए उस स्थान को छोड देने को कहा, पर विनोबा के निश्चय को कौन बदल सकता था! आज भी इस महान् सत ने ५ करोड़ एकड भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया है, जिसकी सफलता के लिए वह पूरे सकल्प-बल से लगे है। जीवन की हर कृति मे उनके इस सकल्प-बल का दर्शन होता है। उस छोटे-से सकल्प से ही चट्टानो में से निर्मल जल का स्रोत फूटा और आज एक बड़े सकल्प-बल से देश में समता और सहृदयता की सोनसिली नहर निकली है।

आश्रम के कठोर कर्ममय वातावरण में अनेक प्रकार के प्रयोग होते रहे। बापू विनोद में कहा करते थे कि साबरमती-आश्रम में कोई आश्रमवासी काम करने में आलस्य करता हो तो उसे विनोबा के पास भेज दो। इस प्रकार कर्मयोगी की कर्म-साधना सच ही बड़ी कठोर थी। कर्मठ विनोबा की सहनशीलता और दृढ़ता का एक किस्सा मुझे याद आ रहा है, जिसे सुनकर मैं दंग रह गई थी। यों तो उनका सम्पूर्ण जीवन ही सहनशीलता

और दृढता का एक आदर्श नमूना है। एक बार की बात है परमधाम, पवनार मे विनोबा अध्ययन मे मग्न थे, तभी एक विच्छू ने उनके पैर मे काट लिया, पर बिना आह-ऊह किये वह उस जलन और वेदना को सहते हुए ही बैठे रहे। यहा तक कि उनका पैर बिच्छू के जहर से काला पड गया। जब वेदना वहुत ही बढ गई तो विनोबा ने चरखा मगाया और चरखा कातते-कातते वह इतने एकाग्र हो गए कि उन्हे न बिच्छू काटने का ध्यान रहा और न वेदना का ही अनुभव हुआ। विरले ही सतो मे महानता के ऐसे अद्‌भुत लक्षण पाये जाते है। ऐसे ही सतत एकाग्र चिन्तन और दृढ आत्मबल से आज उन्होने भूदान-यज्ञ का आरभ कर महान क्रान्ति का आह्वान किया है।

प्रथम सत्याग्रही

दूसरा महायुद्ध शुरू होने पर अग्रेजो ने हिन्दुस्तान को भी जबरदस्ती युद्ध की आग मे झोक दिया, जिसके विरोध मे गाधीजी ने सत्याग्रह प्रारभ करने का निश्चय किया। गाधीजी सत्याग्रह सामूहिक तौर पर नही, व्यक्तिगत रूप से शुरू करना चाहते थे। काग्रेस वर्किंग कमेटी के सामने उन्होने अपना यह विचार रखा। प्रथम सत्याग्रही के नाते कोई जवाहरलालजी का नाम सोचता तो कोई सरदार पटेल का। सारे देश का ध्यान इस ओर लगा था कि गाधीजी प्रथम सत्याग्रही के रूप मे किसको चुनते है। एक दिन गाधीजी ने विनोबा के प्रथम सत्याग्रही होने की घोषणा कर दी। किसीने स्वप्न मे भी नही सोचा था कि वापू विनोबा के रूप मे देश को एक नये युग-पुरुष का दर्शन करायेगे। आज भी विनोबा देश मे रामराज्य की स्थापना के लिए प्रथम सत्याग्रही के रूप मे ही सामने है। देश के इस प्रथम सत्याग्रही ने ही आज देश को पुन जगाया है, रामराज्य की ओर बढ चलने के लिए। जनता भी जाग उठी है। इस सत के महासकल्प को पूरा करने मे जुट गए है सर्वोदय के सब सेनानी।'देश-सेवको ने बापू के इस दृढ-निश्चयी भक्त सत्याग्रही से अहिसक क्रान्ति का महामत्र पा लिया है। गरीब जनता ने इस फकीर वाबा के साथ ललकारा है—"भूखी जनता चुप न रहेगी, धन और धरती बटके रहेगी।" बुद्ध भगवान के शिष्यो की

तरह संत विनोबा के शिष्य निकल पड़े है भूदान की भिक्षा के लिए "सबै भूमि गोपाल की" कहते हुए और द्वार-द्वार पर गाते हुए। अग्नि प्रज्वलित हो उठी है भूदान के इस प्रजासूय-यज्ञ की। बापू के "भारत छोड़ो" के महामत्र से स्वराज्य हासिल हुआ, बाबा के "भूमि दो" के अमोघ मत्र से ग्रामराज्य हासिल होगा और बापू का रामराज्य का स्वप्न पूरा होकर रहेगा।

जेल-यात्राएं

विनोबा ने कई बार जेल-यात्रा की। सन् १९३२ मे जब वह धूलिया-जेल में थे तो वहा का जेलर भी उनका भक्त बन गया था। उसी जेल मे विनोबा ने गीता पर अठारह प्रवचन दिये, जो 'गीता-प्रवचन' के नाम से घर-घर में सरल भाषा मे गीता का सन्देश सुना रहे है। विनोबा ने अपना सपूर्ण जीवन गीता के उपदेशो के आधार पर बनाया है। किसी भी बात को गीता की कसौटी पर कसे बिना वह स्वीकार नही करते। 'गीता-प्रवचन' मे उन्होने कहा है कि "जिस समय मैं किसीसे बोलता होता हू तो गीता-रूपी समुद्र मे तैरता हू, पर जब मैं अकेला होता हू तो उसमे डुबकिया लगाता हू।" सचमुच विनोबा हर घडी चिन्तन-मनन मे लीन रहते है। अध्ययन-चिन्तन मे लीन इस सतमूर्ति के पास बैठकर ही नही, दूर से भी उस दिव्य आत्मा मे से जो एक परम शाति, आह्लादमयी चेतना और गहरी आत्मानुभूति प्राप्त होती है वह वस्तुत. अद्भुत है। बडे-बडे साधु-सत तथा योगी जगलो और वन-पर्वतो में एकान्त-चिन्तन के लिए जाते है; किन्तु यह कर्म-योगी निरन्तर कर्म-रत रहता हुआ भी मानो सदा आत्म-लीन और ध्यान-मग्न रहता है। दर्शनशास्त्रो के गहरे अध्ययन मे वह आत्म-दर्शन करता है और आत्म-ज्ञान पाता है। इस आत्म-ज्ञान के गहरे स्तल में पहुचकर ही उसे महान् कर्म की अमर पुण्य प्रेरणा होती है और ज्ञान और कर्म से परिशुद्ध अन्तःगुहा से भक्ति की निर्मल गगा वह निकलती है, भगवान के मन्दिर की ओर। ज्ञान, कर्म और भक्ति की इस पावन त्रिवेणी में स्नान कर अनेक संतप्त मानव शान्ति और सुख का अनुभव करते है। इस बहती गगा मे डुबकी लगाकर मैं तन हो कभी-कभी मगलमय पुण्य अनुभूतियो मे आत्म-विस्मृत-सी हो उठती हूं।
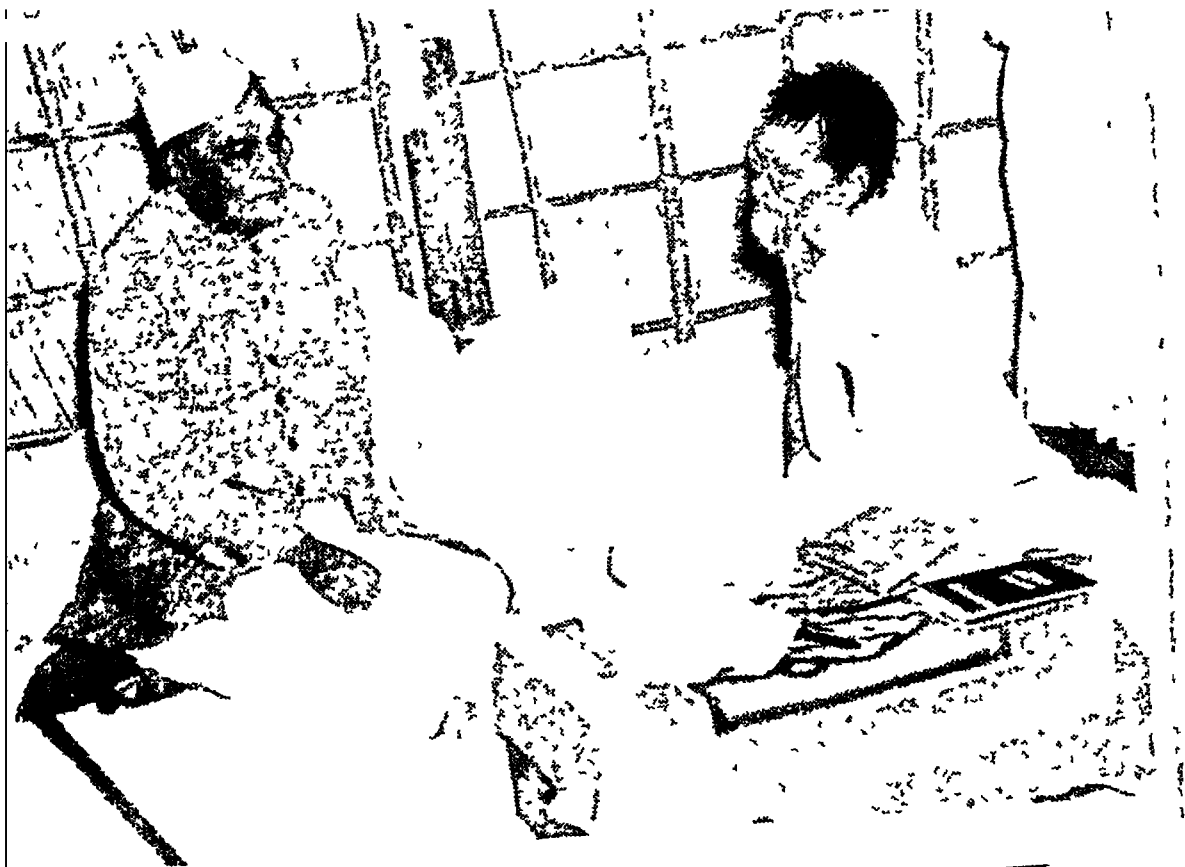
विचार-विमर्श

चादोल में
नेहरूजी को तिलक करते हुए
लेखिका

स्वाध्याय में लीन

भूदान-यात्रा पर
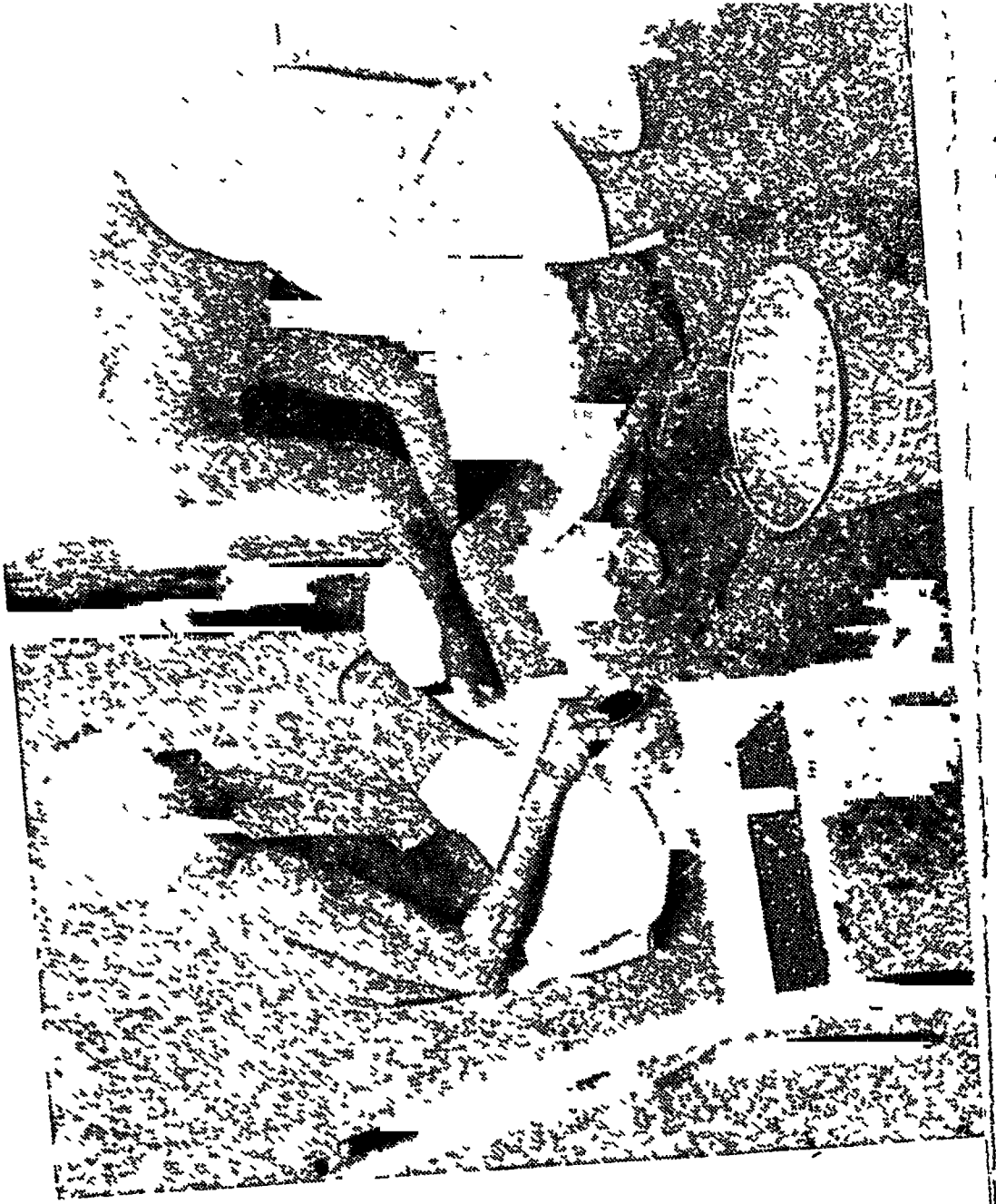
यात्रा का
श्रम-परिहार
करते हुए

शांति-सेना के सेनानी

विनोबा के साथ
श्रीमन्नारायण
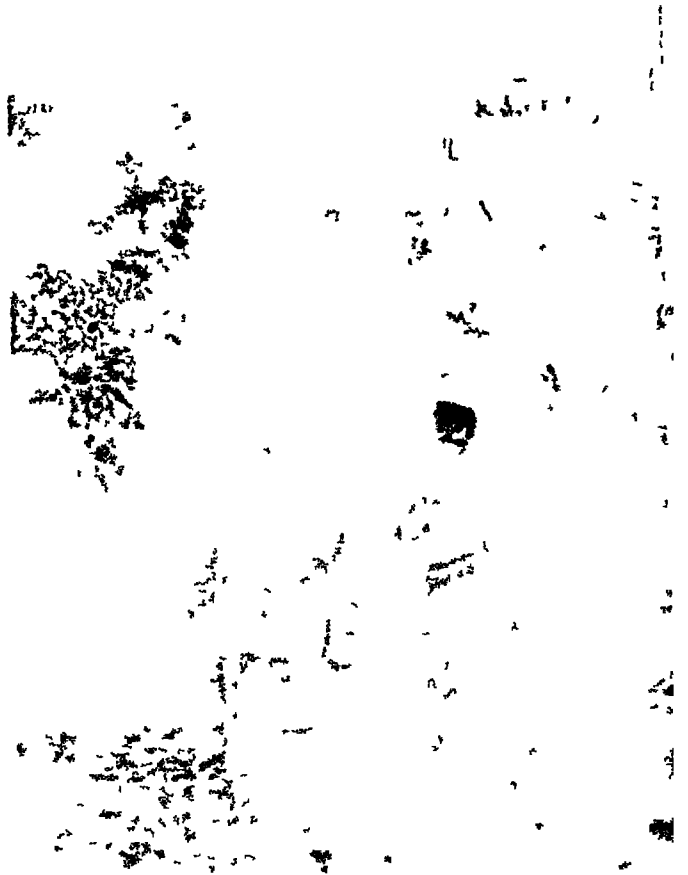
सूत्र-यज्ञ

(बाबा और बाबूजी के साथ लेखिका)

प्रार्थना-स्थल पर

बाल-सुलभ मुस्कराहट

प्रातः-भ्रमण

बाल-विनोद

ग्राम्य-जीवन के बीच
अमेरिकन भाई श्री रे. मेगी से
चर्चा करती हुई लेखिका

कहिये, क्या अब भी आपकी हिम्मत हो सकती है कि इस प्यारी मीठी दासता को छोड़कर आज़ादी की बात को सोचें ? इस मिथ्यात्व से प्रेम हटाकर आप उस प्रेम में लगें ? जिस घोड़े को थान पर बधे-बंधे घास मिल जाती है, तोबड़े मे ही सही, दाना मिल जाता हो, दिन मे तीन-तीन बार स्वच्छ जल मिल जाता हो, वह कभी जगल की आज़ादी की बात सोच सकता है ? कभी उसके लिए तैयार हो सकता है ? वह तो मरीचिका को सत्य और सत्य को मरीचिका समझे हुए है। यही हाल मनुष्य का है। वह क्रिया-काण्ड और धर्म के आडम्बरों को धर्म माने हुए है। खोटे देवता, खोटे ग्रंथो और खोटे गुरुओ को पूज्य समझे हुए है। और सत्य धर्म को, प्राकृतिक शक्ति-रूपी देवताओ, को प्राकृतिक रहस्य-ग्रन्थों को और प्राकृतिक गुरुओ को, जो उसे कभी धोखा नही दे सकते, मानने को तैयार नही। आजादी उसके हाथ कैसे लग सकती है ? आत्मा से प्रेम उसे कैसे हो सकता है ?

माया के तीसरे रूप में व्यक्ति का अजब हाल हो जाता है। वह माया-जाल से निकल चुका होता है। पर जिस तरह बरसों पिंजडे मे रहा हुआ तोता पिंजडा छोड़ते हुए झिझकता है, वैसे ही वह भी माया-जाल से बचकर भागने की हिम्मत नही कर पाता। बस, उसे यह समझिये कि वह पिंजड़े की खिड़की से बाहर निकलकर पिंजडे पर बैठे तोते के समान है। वह एक कथा का वह व्यक्ति है, जो कहता था कि मैंने तो कमली छोड़ रखी है, पर कमली मुझे नही छोड़ रही है। ऐसा आदमी अबेर-सबेर आजाद होकर रहता है। एक तरह उसे सोया हुआ समझिये। आंख खुली कि वह आजाद हुआ।

माया का चौथा रूप हमे जीवित रखने के लिए अत्यावश्यक है। उसे छोडने की कोशिश करना आत्महत्या करना है। उतने कपट को छोडना अधर्म होगा। उतनी माया इस ससार मे बने रहने के लिए बहुत ही आवश्यक है। हमारी देह माया के सिवा कुछ नही, पर उसके बिना आत्मा भी कुछ नही। देह के बिना न हम कुछ हैं, न समाज कुछ। न फिर धर्म है, न जीवन। देह को बनाये रखने के लिए अनेक छल-कपट की आवश्यकता होती है। पर उसके लिए आजाद आत्म-प्रेमी को कोई प्रयास नही करना होता। ठण्डे मुल्क मे शरीर बिना प्रयास के गोरा हो जाता है, बाल सुनहरे हो जाते है। गर्म देश मे आपोआप शरीर भूरा होने लगता है, काला हो जाता है। कही यह शरीर पीला हो जाता है और कही लाल। यह सब प्राकृतिक माया है। यह एक तरह का कपट है, पर यह अत्यावश्यक है। इस सबसे आजाद व्यक्ति के मन मे कोई बाधा उपस्थित नही होती। कोई भेद नही जागता। उसे अच्छी तरह मालूम है कि एक ही पशु भिन्न-भिन्न देश मे, भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के मातहत, भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। इसलिए उसका इस तरह का कपट या माया उसकी आजादी को हानि नही पहुचाता।

आप आजाद हैं, आत्म-प्रेमी हैं, तो अपनेको परख लीजिये, आप सचमुच माया मे फसे हुए भी अपने-आपको माया से अलिप्त पायगे।

: ५ :

लोभ को छोड़ो

लोभ सब उच्छृङ्खलताओ की जड़ है। सब बुराइयो का बाप है। यही एक ऐसा अवगुण है, जो दासता की ओर इस तरह खिचता है, जैसे लोहा चुम्बक की ओर। लोभ कोई एक रूप मे प्रदर्शित नही होता। क्रोध, मान, माया तीनो ही की जड़ मे लोभ विद्यमान रह सकता है।

लोभ शब्द का आम अर्थ लालच समझा जाता है। यह अर्थ है तो ठीक, पर अपूर्ण है। कंजूस आदमी को भी लोग लोभी कह बैठते हैं। लोभ का मतलब होता है, सांसारिक सुख के साधनो से सतत् प्यार। लोभी की सभी इंद्रिया सदा जवान बनी रहती हैं। लोभी की इन्द्रियो को बुढापा नहीं आता। इतनी ही बात नही, बुढापे मे लोभी की इन्द्रियां युवा से युवातर हो जाती हैं। बुढापे का यही तो यौवन है।

पशु-पक्षियो, कीट-पतग सभीमे लोभ पूरी तरह जागा हुआ होता है। अगर उनको आदमी जैसा मस्तिष्क मिला होता तो उनमे से किसी एक जाति ने ही मनुष्य को भूतल से नेस्तनाबूद कर दिया होता। आदमी कहीं देखने को भी न मिलता। अब यह आदमी के हाथ में है कि अगर वह चाहे तो किसी भी जाति का सर्वनाश कर सकता है। इतना ही नही, लोभ की प्रेरणा से मनुष्य मनुष्य-जाति के सर्वनाश पर उतारू हो सकता है।

लोभ में सबसे बड़ी बुराई यह है कि यह तृष्णा को भड़का

देता है। तृष्णा आग की ज्वाला बन बैठती है। क्या दुनिया का कोई इञ्जीनियर इस बात का तखमीना बता सकता है कि एक प्रज्वलित अग्नि देवी का पेट कितने ईंधन से भर सकता है?

तृष्णा, जो लोभ की ही बेटी है, कभी अपनी भूख नही मिटा पाई। जब भी यह भूख मिटाने बैठती है तभी वह दुगुनी-तिगुनी बढती जाती है। अनुभवी लोगो का कहना है कि जब इसे भूख लगे तो इसे कुछ भी खाने को न दो। तब और, तब ही, इसकी भूख कम हो सकती है। अगर मिट नही सकती तो इतनी कम जरूर हो सकती है कि वह न आजाद रहने मे बाधक हो सकती है, न आत्म-प्रेम को रोक सकती है।

लोभी पुरुष का अजब हाल हो जाता है। सभी राजा लोभ की देन हैं। जिसे महत्वाकाक्षा कहा गया है, वह लोभ के वृक्ष की एक शाखा है। एक लालची राजा की कहानी यो सुनाई गई है :

एक राजा था। वह बेहद महत्वाकाक्षी था। एक दिन उसे क्या सूझा कि उसने सागर पर चढाई कर दी। इस चढाई का बहाना यह था कि वह पृथ्वी का तीन-चौथाई भाग घेरे हुए है और एक कौडी कर नही देता। यह विचार मन मे आना था कि उसने सागर पर गोलाबारी आरम्भ कर दी। कुछ पखवाडो की गोलाबारी के बाद सागर-देवता प्रकट हुए। उन्होने गोलाबारी का कारण पूछा। राजा ने बधा-बंधाया कारण बता दिया, "तुम तीन-चौथाई धरती घेरे बैठे हो और कर एक कौड़ी नही देते। फौरन कर दो, नही तो तुम समूल नष्ट कर दिये जाओगे।" सागर-देवता राजा की यह बात सुनकर मुस्कराये और अन्तंधान हो गये। दूसरे ही क्षण सागर की एक ऊंची

लहर आई और सारा सागर-तट हीरे-जवाहरात और मोतियो से अट गया।

राजा यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। राजा के दरबारी, उसकी फौजे सभी आनन्द से फूल उठी, क्योंकि राजा ने हुकुम दे दिया कि जिससे जितना उठाया जाय, उठा ले जाओ। पर ऐसा करने पर भी उस माया के ढेर का हजारवां हिस्सा भी खत्म न हो सका। राजा का लालच भडका। वह दुखी हो उठा। उसने फिर तोपे दागने का हुकुम दे दिया। पखवाडों की गोलाबारी के बाद सागर-देवता फिर प्रकट हुए। राजा से बोले, "अब क्या चाहिए?" राजा बोला, "इसको लादकर घर ले जाने के लिए सवारी चाहिए।" यह सुनकर देवता अन्तर्धान हो गये।

दूसरे ही क्षण सागर की एक छोटी-सी लहर आई और लम्बे प्याले के आकार की आदमी की एक खोपड़ी छोड गई। राजा पहले तो बहुत बिगडा, पर किसी तरह मन को काबू में करके उसने अपने सेनापति को हुकुम दिया कि इस खोपडी के प्याले में खजाना भरो। सेनापति यह हुकुम सुनकर मुस्कराया। पर हुकुम सुनकर ज्योंही उसने वे जवाहरात खोपडी में डालने शुरू किये कि उसने देखा, वे सब उसमे समाते चले जा रहे हैं और खोपडी का वह प्याला है कि भर ही नही पा रहा है! राजा को बडा अचरज हुआ। वह कुछ न समझ पाया। जब सेना की मदद से सारा खजाना खोपडी के प्याले में भर दिया गया और खोपड़ी गाड़ी में लादी जाने को थी कि राजा ने वैसा करने से रोक दिया और फिर से गोलाबारी का हुकुम दे दिया। अबकी बार जल-देवता तुरन्त प्रकट हो गये और

नाराज होकर बोले, "राजन्, तुम बार-बार हमे क्यो हैरान करते हो ? अब तुम्हे और क्या चाहिए ?" राजा विनम्र होकर बोला, "चाहिए कुछ नही । बस यह ज्ञान चाहिए कि यह खोपडी किसकी है और किस चीज की बनी हुई है ?" जल-देवता खिलखिलाकर हँस पडे और राजा के सिर पर इस तरह हाथ फेरते हुए, जैसे कोई बाप अपने बेटे के सिर पर फेरता है, बडे प्यार से मीठे शब्दो मे बोले, "राजन्, यह आदमी की खोपडी है । लोभ, लालच के मसाले से तैयार की गई है ।"

क्षण-भर के लिए राजा को आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ । इससे उसे अनुपम आनन्द मिला । पर दूसरे ही क्षण वह फिर लोभ के गर्त मे जा गिरा ।

यह समझना भूल है कि केवल धन का ही लोभ या लालच होता है । इससे कही बढकर प्रसिद्धि और नामवरी का लालच होता है । जो पदविया यूनिवर्सिटियो से प्राप्त होती है, उनका एक नाम है उपाधि और 'उपाधि' शब्द का दूसरा अर्थ है, आफत, बला । इसलिए प्रसिद्धि की बला एक बला ही है । पर लोभ उस बला मे फंसकर बेहद सुख मानता है । श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम प्राणी मे भी यह इच्छा रहती है । आदमी चाहे कितनी ही बडी उम्र का क्यों न हो जाय, नाम कमाने की बीमारी से कभी बच नही सकता । वर्चस्व की भावना लोभ-लालच की ही देन है । स्वामी राम एक मशहूर सन्यासी हो गये है । वह अकिंचन व्रतधारी थे । पंजाब यूनिवर्सिटी से उन्होने गणित मे एम ए. किया था और यूनिवर्सिटी का रिकार्ड तोडा था, यानी कोई उनसे आगे नही बढ पाया था । वह कुछ दिनो तक प्रोफेसर भी

रहे। धर्म-प्रचार के लिए अमरीका गये। अमरीकावालों ने उन्हे अपनी यूनिवर्सिटी की उपाधि देनी चाही, पर उन्होंने यह कहकर लेने से इन्कार कर दिया कि भारत की एक यूनिवर्सिटी के कलंक का टीका मेरे माथे पर पहले ही लगा हुआ है। अब आप और लगाकर क्या करेंगे। ऐसे वाक्य हमारे-तुम्हारे जैसे के मुह से नही निकल सकते। विरले ही आज़ाद व्यक्ति के मुह की ऐसे वाक्य शोभा बढा सकते है। अब आप समझ गये होगे कि धन से भी ज्यादा चाह लोभी को होती है, नामवरी और प्रसिद्धि की।

धन और प्रसिद्धि आसानी से प्राप्त की जा सकती है। पर इन दो से भी लोभी को सन्तोष नहीं होता। यह पाकर अधिकार (सत्ता) की भूख और तेज हो उठती है। राजा बनने की सूझती है, दिग्विजय की सूझती है। और न जाने क्या-क्या सूझती है। लोभ की खोपड़ी की थाह किसीको कभी मिल ही नही पाई। इस तलफटी बावड़ी की थाह अगर कोई ले आये तो इसे चमत्कार ही समझना चाहिए। आइस्टीन नाम का एक विज्ञानी हो गया है। वह प्रसिद्ध तो खूब था। चोटी का विज्ञानी माना जाता था। एटम बम और हाईड्रोजन बम उसीके मस्तिष्क की सूझ है। इसीसे उसकी प्रसिद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। अमरीका-वासी होने से उसे धनाढ्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अमरीका के धन-पतियों के सामने वह कुछ भी नही था। यह व्यक्ति न जाने कैसे एक महान् अविष्कार को दुकराने में समर्थ हो सका। इसे इसराइल देश के सभापति बनने का निमन्त्रण दिया गया, पर इसने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि

मेरा क्षेत्र विज्ञान है। मुझे राजनैतिक क्षेत्र से क्या लेना-देना। यह वाक्य उसीके मुह से शोभा देते है, नही तो आज क्या डाक्टर, क्या दार्शनिक, क्या धर्मगुरु, क्या रसूल-नबी, सभी तो राजा बनने के भूखे रहते है।

अब पाठको ने भली-भाति समझ लिया होगा कि यह लोभ कितने ऊचे दर्जे की उच्छृङ्खल चीज है। कैसे-कैसे जाल फैलाते है। एक कवि का एक चरण याद आ जाता है—
"मुर्गे दिल क्यों न फसे, दाना भी हो दाम भी हो।"

लोभ और कल्पना, जब ये दोनो बैठ जाते है, तब न जाने कितनी दुनिया गढ डालते है। कल्पना दुनिया गढती है और लोभी मन उसे जीतता है और यह सिलसिला चल पड़ता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब लोभ और कल्पना ने मिल-कर तैयार किये है। ऐसी-ऐसी कहानिया गढी हैं कि इन सब-को महान् बनाकर कभी किसी नारी के हाथ की कठपुतली बना दिया है और कभी नर की। राम को अधिकार के पहाड पर चढा दिया और फिर शबरी के झूठे बेर खिला दिये। यही हाल कृष्ण का किया। एक भील के तीर का शिकार बना दिया। सर्व-शक्तिशाली भगवान को वामन बना-कर बलि के यहा भीख मगवा दी। मानो बलि को नष्ट करने के लिए सर्वशक्तिमान के पास कोई उपाय ही नही रह गया था। कल्पनादेवी ने स्वर्ग तैयार किये। लोभी मन ने तपस्या शुरू कर दी। फिर या तो स्वर्ग पहुच गया, नही तो स्वर्ग के देवताओ को अपनी सेवा मे बुला लिया। कल्पना देवताओ की प्रगति से खुश न हुई। झट उसने भू-तल पर ऋषि, मुनि और तीर्थंकर तैयार कर दिये। स्वर्ग के देवता अपना बड़प्पन भूल

आदमी बनने को सोचने लगे। क्यों? क्योंकि आदमी होकर वे सर्वज्ञ बन सकते थे। सिद्ध हो सकते थे। सर्वशक्तिमान हो सकते थे। परम सुखी हो सकते थे। अनन्तकाल तक अनन्त सुख भोग सकते थे। चालीस-पचास बरस की तपस्या में यदि अनन्त सुख मिलता हो तो कौन मूर्ख होगा, जो इस सौदे के लिए तैयार नही हो जायगा। और फिर देवताओं के मुंह में तो पानी कैसे नही आयगा।

मतलब यह है कि भूत-प्रेत, देवी-देवता, यहांतक कि सृष्टि का रचयिता सब लोभ और कल्पना की सूझ के फल है। अब पाठक सोच ले कि दासत्व की बेडियां काटना कितना कठिन कार्य है। कल्पना-कबूतरी को पकडना और मन की उड़ान को रोकना कितना कठिन कार्य है। लोभी की उच्छृङ्खलता सब उच्छृङ्खलताओं से कठिनतम मानी गई है। पर आत्मप्रेम ऐसी चीज है, जिसके आगे इसकी कठिनाई अपने-आप पिघल जाती है। आजादी का दृढ विश्वास, आजादी का सम्यक ज्ञान और आजाद व्यक्ति का आत्मप्रेम, इनके आगे कोई भी चीज कठिन नही है।

क्रोध, मान, माया की तरह लोभ के भी चार दर्जे हैं। पहले दर्जे में मनुष्य को सारा जगत लोभमय दिखाई देता है। जिसे जडवाद कहते है, वह इसी अवस्था में अपने पूरे रंग पर होता है। जडवाद बुरी चीज नही। जडज्ञान बड़े काम की चीज है। बुरी बात तो है जगत के सब पदार्थों को जड़मय समझना। जड और चेतन, जड़ और आत्मा, इन दो का भेद न मानिये, पर यह तो कहिये कि यह ज्ञान-गुण किसके सिर थोपा जायगा। अगर जडज्ञानी भी है, तो भी कोई हर्ज नही। ज्ञान आज़ादी

चाहेगा, क्योकि आजादी ही सुख है। और फिर जड़ भी अनुकूल और प्रतिकूल वेदना का अनुभव करने लगेगा। अगर इस तरह के ज्ञान से किसीकी तसल्ली होती है तो इससे हमारा कुछ नही बनता-बिगडता। हम जिस जडवाद से पाठको को बचाना चाहते है, यह है वह जडवाद, जो जगत को ज्ञान-शून्य समझता है, अथवा वह ज्ञानी, जो चेतन या आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार ही नही करता। न करे। फिर वह दासता के बधन से नही निकल सकता। जड दासता से घबराता ही नही, वह आजादी की कद्र ही नही जानता। आजाद होने की सोचता ही नही।

मनुष्य की एक अवस्था ऐसी होती है, जब उसका ज्ञान इतना कम होता है कि उसे अज्ञानी की सज्ञा दी जा सकती है। अज्ञानी होना बुरा नही। यह ज्ञानी बनने की एक मजिल है। दासता भी बुरी नही, क्योकि वह आजादी की चाह उत्पन्न करती है। बुरी बात तो यह है कि एक आदमी अज्ञानी है और कहता है कि मैं अज्ञानी नही हू। तब बताइये, उसका उद्धार कैसे हो? एक आदमी दास है, पर वह यह मानकर नही देता कि वह दास है। अब कहिये, वह कैसे आजाद हो सकता है! लोभ का यही पहला दर्जा है। इस दर्जे मे पडे हुए जान पर खेल जाते हैं। जान पर खेल जाना बहादुरी नही होता, नही तो सारे कीट-पतग, पशु-पक्षी और वे नर-नारी भी, जो किसी तरह के लोभ मे आकर आत्म-हत्या कर लेते हैं, बहादुर समझे जायगे। आत्म-हत्या अगर बहादुरी होती तो वह कानून मे दण्डनीय क्यों समझी जाती? इसलिए जडवाद सर्वथा त्याज्य है। ऐसा ही जडवाद बुरा समझा गया है।

इसमे शक नही कि हमारा देह जड है और इस जड़ के बिना आत्मा एक क्षण नही रह सकता। यह भी ठीक है कि अन्दर-बाहर हम जड़-ही-जड हैं। जो हममे चेतन या आत्मा है वह अदृश्य तो है ही, ऐसा विषय भी नही है, जिसे मन या मस्तिष्क आत्मा की मदद के बिना कुछ भी समझ सके। आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जाना जा सकता है। दीपक प्रकाशित होकर और पदार्थों को ही प्रकाशित नही करता, अपनेको भी प्रकाशित करता है। अंधेरे को अंधेरा दिखाई देता है। हमारी राय तो यह है कि अंधेरे को अंधेरा दिखाई नही देता और अगर दिखाई ही देता है तो प्रकाशमय दिखाई देता होगा, क्योकि दीपक के नीचे छिपा हुआ अंधेरा प्रकाश देखकर अपने और प्रकाश के बीच मे अन्तर समझ लेता होगा। ठीक यही हाल जड देह का है। मन और मस्तिष्क सर्वथा जड हैं, पर चेतन के साथ मिलकर वे अन्तर करना सीख लेते हैं। आत्मा तो न बोल सकता है, न सूंघ, सुन या देख सकता है। वह तो विचार भी नही कर सकता। इसलिए यह फैसला कि जड़ जड है और चेतन चेतन है, बुद्धि की देन है, और बुद्धि जड है। पर यह बुद्धि जड़ बगैर चेतन के शायद बोल ले, पर तोते की तरह। या उससे भी बुरी तरह, पर समझ-बूझकर नहीं।

लोभ का दूसरा दर्जा वह है, जहां वह जान देने की उच्छृङ्खलता छोड चुका होता है। अब वह जान देता नही है, वह तो अपनी और अपनो की रक्षा करता है और उस कोशिश मे जान गवा बैठता है। यह मूर्खता है और नही भी है। उच्छृङ्खल होकर ऐसे श्रेष्ठ काम कर डालना मूर्खता है। स्वतन्त्र और आजाद होकर ऐसा ही श्रेष्ठ काम करना बुद्धि-

मत्ता है, लेकिन चाहे वह मूर्खता करे या बुद्धिमत्ता, वह शहीद समझा जायगा, क्योंकि वह उतना अज्ञानी नही रहा कि भले-बुरे मे अन्तर ही न कर सके। लोभ के पहले दर्जे की अवस्था से वह अब ऊ चा उठ चुका होता है। फिर भी उसमे यह कमी बनी ही रहती है कि उसे कर्तव्य का पूरा-पूरा ज्ञान नही हो पाता। पागल आदमी अगर अपनी मा को मा कहे तो यह कथन पागलपन-रहित है, पर यह इस बात का प्रमाण नही है कि वह सोच-समझकर मा को मा कह रहा है। लोभ के इस दूसरे दर्जे मे जो सत्कर्तव्य आदमी से बन पडते है, उनकी गिनती सत्कर्तव्यो मे नही की जा सकती, क्योकि वे काम कर्तव्यवश किये गए नही होते, लोभवश किये गए होते है। छोटे बच्चे मिठाई के लालच मे अगर मा की सेवा करे तो सेवक नही समझे जायगे। इसी तरह बडे आदमी लोभवश जो कार्य करते हैं, वे सेवक नही समझे जा सकते। समाज उन्हे वैसा समझ ले तो इससे उनकी अपनी तसल्ली नही होनी चाहिए। ऐसी भूल करने से आज़ादी के पथ पर वे अटके रह जायगे, आगे नही बढ पायगे।

लोभ-लालच मे डूबे हुए कर्तव्य-परायण पुरुषो से इतिहास भरा पडा है। लोभ से बडे-बडे कर्तव्यो का पालन हो सकता है। स्वर्ग-मोक्ष की खातिर जब तपस्या की जा सकती है तो क्या राज्य की खातिर गुरुजनो की सेवा नही की जा सकती। लेकिन इस तरह किया हुआ कर्तव्य-पालन आजाद व्यक्ति का लक्षण नही, आत्म-प्रेमी की पहचान नही। लोभ की कमी ही कर्तव्य-परायणता की पहचान है। कर्तव्य-परायण इससे नही पहचाना जाता कि वह माता-पिता और अन्य गुरुजनो

के साथ शिष्टतापूर्वक वर्ताव करता है या नही ? किन्तु इससे पहचाना जाता है कि उसने अपने लोभ-लालच को कहांतक जीत लिया है। उसने अपने ममत्व को कितना काबू में कर लिया है, क्योंकि यही वह गुण है, जो आजादी के पथ पर व्यक्ति की चाल तेज करता है और उसे आगे बढाता है।

इतिहास ने अशोक को महान् कह डाला है। हो सकता है, वह लोभ के दूसरे दर्जे को पार कर तीसरे दर्जे मे पहुंच गया हो। पर जहांतक हमारा इतिहास का अध्ययन है, वहां-तक हम उसे महानता की कसौटी पर पूरा उतरता हुआ नहीं पाते।

अशोक का बाबा चन्द्रगुप्त महावीर के उपदेशों से प्रभा-वित था। हो सकता है, उन दिनो जैन धर्म के नाम से कोई सगठन न रहा हो, पर महावीर का अनुयायी होने के नाते चन्द्रगुप्त को जैन ही मानना पडेगा। जैन पुराणों मे चन्द्रगुप्त का जिक्र है।

जैन धर्म और धर्मों की अपेक्षा पूर्ण अहिंसावादी है। आज उसके अनुयायी पच्चीस लाख के करीब हैं। वे प्रायः सभी शराब-मांस से बचे हुए हैं। इसलिए यह मानने में किसीको इन्कार नही होना चाहिए कि चन्द्रगुप्त का बेटा बिन्दुसार अगर निरामिष-भोजी न भी रहा हो तो कुछ दिनों जरूर मांस से परहेज करता रहा होगा और सीधे जीव-हत्या से तो जरूर बचता होगा। हजरत मोहम्मद तक ने अपने जीवन में कभी किसी जीव की हत्या नहीं की। वह सेनापति जरूर रहे, पर कभी तलवार तक म्यान से नहीं निकाली। तब बिन्दुसार

से ऐसी आशा करना कोई बहुत बडी आशा नहीं है।
अशोक इसी बिन्दुसार का बेटा था। इसलिए उसे ज
मानने मे झिझक नही होनी चाहिए। अब जैन होते हुए
वह कलिग पर चढाई कर देता है। लाखो को मौत
घाट उतार देता है। यह किस कर्तव्य-परायणता मे शामि
है? इतना ही नही, राजगद्दी पाने के लिए वह जितने जु
करता है, वे भी उसे कर्तव्यपरायण सिद्ध नही करते
कलिग-विजय के बाद जब वह बौद्ध धर्म स्वीकार कर ले
है और मास-भक्षण कम कर देता है तब उसे यह समझ बैठ
कि वह दयाशील बन गया है, त्यागी हो गया है, इतिहास
भारी भूल समझी जायगी। लाखो को मौत के घाट उता
कर उसने सारे भारतवर्ष पर वह धाक विठा दी थी कि अ
वह सचमुच सन्यासी बनकर राजसिहासन पर बैठा रहता
किसीकी मजाल नही थी कि जो उसके राज्य पर आक्रम
करने की सोचता या उसके अपने राज्य का कोई व्यक्ति उ
के खिलाफ विद्रोह का झडा खडा करता। इसलिए उस
सारा त्याग लोभ मे डूबा हुआ था। वह राजा होते हुए
ऋषि के नाम से भी प्रसिद्ध होना चाहता था। इसलिए उ
महान् कह बैठना हम तो इतिहास की भूल ही मानते है।
एक और उदाहरण लीजिये। मुगल बादशाहो मे ह
बाबर महान् जचता है। भले ही उसने दौलतखा को धोखा दि
हो, पर धोखा देना तो राजनीति मे साधारण कृत्य समझा जा
है। लेकिन जब उसका बेटा हुमायू बीमार पडता है औ
वह राजपाट, यहातक कि अपनी जान का भी लोभ छोड़
बेटे को बचाता है और अपनी जान पर खेल जाता है, तब व

सच्चे अर्थो मे पूरा आजाद होकर इस दुनिया को छोड़ता है। इसमें हमारे पाठको मे से किसीको पुत्र का मोह झलक सकता है, पर उससे तो कोई खाली नही। इसलिए उसको गिनना बेकार। बाबर को महान ही कहना पड़ेगा।

अब लीजिये इतिहास के अकबर महान को। वह मरते समय अपने मृत पुत्र दानियार को याद करता है, लेकिन जीवित पुत्र सलीम (जहांगीर) से बेजार होकर। इस तरह वह दुनिया से विदा होता है। हमारी राय मे अकबर ने पूरी तरह से आजाद होकर या कम-से-कम बाबर की बराबर आजाद होकर इस दुनिया को नही छोडा। इसलिए महानता की हमारी कसौटी पर जलालुद्दीन (अकबर) पूरा-पूरा नही उतरता।

बात असल मे यह है कि वे सब बाते, जो मनुष्य को उसका कर्तव्य भुलाये रखती हैं, बडी मुश्किल से पीछा छोडती हैं। सन्त-महन्त और ऋषि-मुनि भी इस तरह रूढियो मे फसे हुए है कि वे इस कीचड़ में फसे हुए भी अपनेको इस कीचड से अलग समझते रहते हैं। आत्मा के लोभ का, भ्रम का, पर्दा इतना बारीक है कि उसे पर्दा समझने की कोई हिम्मत ही नही करता। फिर उसे हटाने या फाड डालने की कोई सोचे भी तो कैसे सोचे ?

अब आइये, तीसरे दर्जे के लोभ पर। यह लोभ बहुत कम हानिकर है। इसलिए इस ओर ध्यान जाना बेहद मुश्किल है। इस दर्जे के लोभी से समाज का कुछ नहीं बिगडता। दुनिया का कोई नुकसान नही होता। जो कुछ होता है, लोभी का ही होता है।

एक बकरी के बच्चे को लीजिये। उसे लिटा दीजिये और

उसके मुह पर एक रूमाल डाल दीजिये। फिर देखिये, उस बच्चे का डर के मारे पेशाब निकल आया है। वह मीगनी कर देगा। पता नही, ऐसा क्यो होता है? क्या वह इतना समझदार है कि यह समझ बैठता है कि वह मारा जाने को है या मार दिया गया है? पर यह सब तो उसका भ्रम है। इतना ही नही, जब-तक आप उसके मुह पर से रूमाल नही हटायगे, वह मृतवत् पडा रहेगा। घटे-भर तक का हमारा अनुभव है। अचरज नही, दो-तीन घटे इस अवस्था मे रखने से वह सचमुच अपने प्राण गवा बैठे। एक बात और। रूमाल उसके सिर पर से हटा दीजिये, वह एकदम उठकर भाग जायगा।

किसी बत्तख को चित्त लिटाकर उसकी छाती पर झर-बेरी के बराबर एक ककरी रख दीजिये। अब वह बत्तख नही उठ सकेगी। यह शरारत हमने आठ बरस की उम्र मे खूब की है। पर हमारे साथी जल्दी ही ककरी फेककर बत्तख को आजाद कर देते थे।

पशु-पक्षी जैसा ही मनुष्यो का हाल है। वे लोभ और लालच से ऊपर उठ चुके है, पर उन्हे पता ही नही कि वे वैसा कर चुके है, और यह हल्का-सा भ्रम उन्हे बरसो दास बनाये रखता है। गाधीजी जब मैदान मे कूदे, दसियो-बीसियो का, शायद सैकडो-हजारो का यही हाल था कि वे लोभ-लालच से बिल्कुल बरी हो चुके थे। पर आजादी की बात सोचने को तैयार ही न थे। गाधी की देखा-देखी जब वे मैदान मे कूदे तो उन्हे अपने पर विश्वास ही न हुआ कि यह उनका अपना बल है या गाधी का सहारा कि वे इस तरह देश की आजादी मे जुट गये है।

यह है लोभ की तीसरी अवस्था। इस अवस्था के मनुष्य बहुत जल्दी मामूली निमित्त पाकर दासता के जामे को उतार फेंकते है और अपनेको पूर्ण आजाद अनुभव करने लगते हैं। इन्हीमे आत्म-प्रेम एक क्षण मे दीपक के जलने की तरह जगमगा उठता है और जिस आत्म-शक्ति का इन्हे भान भी न था, उसके ये अचानक मालिक बन बैठते है और ऐसे काम करके दिखा जाते है, जिन्हे आम जनता आमतौर से और दासता मे फसे खासतौर से चमत्कार समझ बैठते है।

लोभ का चौथा दर्जा क्रोध, मान, माया के चौथे दर्जे की तरह जीवन के लिए अत्यावश्यक है। उतने लोभ के बिना आत्मा देह के साथ नही रह सकता। आत्मा औदारिक देह को छोडकर शायद कुछ क्षण रह ले, पर सूक्ष्म देह को छोडकर एक क्षण भी नही रह सकता। इस लालच के वश उसे सैकड़ो ऐसे कर्म करने पडते है, जो लोभ और लालच दिखाई देते है, पर वे आजादी मे बाधक नही होते। दूसरे उन्हें देखकर भ्रम मे पड सकते है, पर वे वे ही होगे, जिन्हे आजादी की चाट नही लग पाई।

: ६ :

रुचि

रुचि या रति एकार्थवाची शब्द हैं। रुचि को नष्ट करने बैठ जाना, यह न तपस्या है, न त्याग। रुचि का आजादी से गहरा सम्बन्ध है। यह दूसरी बात है कि दासत्व मे यही रुचि मोटा रूप ले लेती है। स्वस्थ और स्वाभाविक रुचि दूसरी

चीज होती है और अस्वस्थ और अस्वाभाविक रुचि दूसरी चीज होती है । स्वस्थ नन्हे बालक पर नजर डालिये । वह नमक, खटाई, मिर्च, सभीके लिए मुह बिगाडकर अपनी रुचि का पता देगा। जो उसके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होगा, उसीको रुचि-पूर्वक ग्रहण करेगा । उसकी यही रुचि धीरे-धीरे बीमार बना दी जाती है । जो रुचि उसकी दासी थी, वही रुचि अब उसको अपना दास बना लेती है । इसमे रुचि का क्या कसूर ! आजाद पुरुष को रुचि से घबराना नही चाहिए । उसे बेडी नही समझना चाहिए । वह स्वस्थ जीवन के लिए अत्यावश्यक है । यह समझना नितान्त भूल है कि सब आजाद पुरुषो की रुचि समान होनी चाहिए ।

रुचि काल के अनुसार बदलती रहती है । देश-देश की अलग रुचि हो सकती है । आदमी-आदमी की अलग रुचि हो सकती है । एक ही आदमी की समय-समय पर भिन्न रुचि हो सकती है । यह सिद्धान्त कि 'परिवर्तन जीवन है' कभी नही भूलना चाहिए । हम हर क्षण बदलते रहते है । समस्त जगत हरदम बदलता रहता है । फिर रुचि हर क्षण क्यो नही बदलेगी? हा, यह जरूर होगा कि रुचि का बदलाव हमसे सम्बन्धित होगा, न कि यह कि हम रुचि के बदलाव से सम्बन्धित होगे । इस बात से कोई इन्कार नही कर सकता कि तेज बुखार मे शक्कर कडवी मालूम होती है । लौग खा लेने के बाद गुड का मिठास बहुत कम हो जाता है । एक वनस्पति का नाम है गुडमार । उसके पत्ते मे यह सिफत है कि वह गुड के मिठास को एकदम नष्ट कर देती है । मधुमेह के रोग का वह इलाज भी है । यह सब कहकर हम यह कहना चाहते हैं कि रुचि जब अस्वस्थ

और दास होती है, तब उसकी छाट भी हानिकर होती है। हमारा यह पक्का खयाल है कि पूरी तरह आजाद आदमी की रुचि खाने में कभी ऐसी भूल नही करेगी, जिसके लिए धर्म-शास्त्र के हवाले ढूढने पडे।

जगल मे रहनेवाले पशु-पक्षी बहुत दर्जे तक आजाद है, फिर भी वे आजाद मनुष्य जितने आज़ाद नही हो सकते। अपनी कम आजादी में भी वे खान-पान मे कम-से-कम भूल करते है। इस विषय मे दासत्व में फसा आदमी न जाने क्या-क्या खाने को तैयार हो जाता है। उस दास और अस्वस्थ रुचि को अपनी आजाद रुचि मानने लगता है।

बन्दर खान-पान के मामले मे आदमी से बहुत मेल खाता है, पर आजाद आदमी की अपेक्षा वह खान-पान मे बेहद गलती कर सकता है, क्योंकि उसकी रुचि पूरी तरह से आजाद नही। कर सकता ही नही है, करता हुआ पाया गया है। वह बहुत जल्दी अफीम खाना सीख लेता है, शराब पीना सीख लेता है। इसलिए कोई आजाद आदमी बन्दर की नकल नही करेगा। वह अपनी रुचि के लिए उस ओर आख उठाकर भी नही देखेगा।

खान-पान की रुचि के बारे में आजाद आदमी को किसी-से सीख लेने की जरूरत नही पडेगी। न इस मामले में उसका कोई गुरु होगा, न ग्रन्थ के हवाले की जरूरत होगी। आज़ाद व्यक्ति स्वय अपना गुरु होता है। ग्रन्थ आजाद व्यक्ति की रचना है। ग्रन्थों ने आजाद व्यक्ति की सृष्टि नही की।

स्वामी राम एक मशहूर सन्यासी हो गये है। वह सचमुच पूरे आज़ाद थे। एक सज्जन उनके पास यज्ञों के बारे में

सलाह लेने पहुचे। वह बोले, "यज्ञ नही करना चाहिए।" सज्जन ने कहा, "वेदो मे तो यज्ञ करने की आज्ञा है।" इसके उत्तर मे स्वामी राम को यही कहना पडा कि यह मृत वेद की आज्ञा है। यह राम जीवित वेद है। यहा यह याद रहे कि उन्होने अपने वचन को मानने के लिए उन सज्जन को बाध्य नही किया। युक्तिया दी। उनकी हर तरह तसल्ली की। यहा हमे पाठको से इतना ही कहना है कि आज़ाद व्यक्ति को अपनी रुचि के लिए ग्रन्थो से हवाले नही ढूढने पडते। उसकी रुचि इतनी परिष्कृत होती है कि उससे भूल हो ही नही सकती।

अन्त मे हमे यही कहना है कि अगर आप आजाद और आत्म-प्रेमी है और अगर आपने अपनेको धोखे मे नही डाल रखा है तो आपकी रुचि आपको कभी धोखा नही देगी। सुबह की लालिमा आती तो सूरज से पहले है, पर हर तरह वह सूरज का अग होती है। इसी तरह आजाद आदमी की रुचि दिखलाई तो ऐसी देती है कि वह उसपर सवार है, पर वास्तव मे वह आजाद व्यक्ति के हाथ का खिलौना होती है। फिर वह लालिमा की तरह प्रकाश करने की जगह अधेरा कैसे फैला सकती है? इसलिए विभिन्न रुचियो से घबराने की जरूरत नही।

: ७ :

अरुचि

'अरुचि या अरति' 'रुचि या रति' का दूसरा पहलू है। रुचि बिना अरुचि के नही बनती। रुचि-अरुचि साथ-साथ

चलती हैं। जहां रुचि है, वहा अरुचि जरूर है। इसलिए अरुचि भी आजादी मे वाधक नही होती। पर यही अरुचि दासता की वेडियो को और जकड देती है। दासता मे यह भयकर रूप ले वैठती है। दासता की निर्मल रुचि जिस तरह त्याज्य है, उसी प्रकार अरुचि भी त्याज्य है। दास की हैसियत से कोई मूर्ति-पूजा छोड़कर देश के लिए, दुनिया के लिए, आफत सिद्ध हो सकता है, जैसा होता आया है। इसके विपरीत आजाद व्यक्ति मूर्ति-पूजा छोड़ता ही नही, करता भी नही। यही कारण है कि आजाद की यह अरुचि उसके लिए स्वास्थ्यकर होती है, समाज के लिए स्वास्थ्यकर होती है और सारे जगत के लिए स्वास्थ्यकर होती है। आजाद व्यक्ति को दासता से रुचि नहीं हो सकती। तव अरुचि होनी ही चाहिए और अरुचि खराव चीज है। पर आजाद व्यक्ति के लिए यही अच्छी चीज है। असल में दासता एक अवगुण है। उसका अपने-आप कहीं अस्तित्व ही नही। उससे रुचि रखो या अरुचि, इससे कुछ वनता-विगडता नही। आजाद पुरुष दासो को अपने वेटों की तरह प्यार करता है, दासो की तरह नही। उसकी दासो से मिलने-जुलने मे तो रुचि होती है, पर दासता से अरुचि वनी रहती है। अगर ऐसा न हो तो उसकी आजादी एक निरर्थक चीज वन जायगी।

दासता के प्रति आजाद व्यक्ति की अरुचि दासों पर प्रभाव डाले विना नहीं रहती। यही हाल उसकी मूर्ति-पूजा के प्रति अरुचि का होता है।

यह सुनकर पाठकों को अचरज होगा कि मोहम्मद साहव ने कावे की तीनसो साठ मूर्तियों में से किसी एक को भी बुरी

नजर से नही देखा। वह आजाद थे। उन्हे मूर्ति की रुचि-अरुचि से क्या लेना-देना था। लेकिन उन लोगो ने भी जो बाद मे उनके अनुयायी बने और जो मूर्ति-पूजक नहीं थे, मूर्तियो के साथ दुर्व्यवहार नही किया। मूर्ति तोडने का पागलपन नही दिखलाया। हा, काबे मे एक मूर्ति छोड तीनसौ उनसठ मूर्तिया जरूर हो गई। एक अलमन्नात्र नाम की देवी रह गई। यह सारे अरबो की पूज्य देवी थी। यह भी मोहम्मद साहब की रुचि-अरुचि का शिकार हुए बिना काबे को छोड़कर चल दी। पाठक यह न समझे कि यह कोई चमत्कार हुआ। नही-नही, सब मुसलमान अरबो की राय से वह भी वहा से हटा दी गई।

यह है स्वस्थ अरुचि। इसका मोहम्मद गौरी की अरुचि से कोई मेल नही खाता। मोहम्मद गौरी रहा होगा आजाद बादशाह। पर न वह पूरा आजाद था, न आत्म-प्रेमी। राजा और आजादी, ये साथ-साथ रहनेवाली चीजे नही हैं। राजा के पीछे अनेक भय लगे रहते है। आजादी और भय मे वही सम्बन्ध है, जो प्रकाश और अधेरे मे। आजाद व्यक्ति की अरुचि प्रकाश और प्रेम फैलाती है। दास की अरुचि अधेरा और घृणा फैलाती है।

रुचि-अरुचि का सम्बन्ध खाने-पीने और पहनने से नही है। प्रत्येक क्षेत्र मे ये अपना कार्य करती हैं। राजनीति और सामाजिक क्षेत्र में ये बडे भयानक रूप धारण कर लेती हैं। उसीका यह परिणाम होता है कि तरह-तरह के राज्य खडे हो जाते हैं और तरह-तरह के धर्मों की स्थापना हो जाती है। तब राज्यों और धर्म-सगठनो मे किसी भी बात की अरुचि को लेकर युद्ध छिड़ जाते हैं। दगे-फिसाद होने लगते हैं।

अरुचि इतनी भयानक चीज होते हुए भी आजाद के लिए त्याज्य नही। जिस तरह रुचि के विना जीवित नही रहा जा सकता, उसी तरह अरुचि के विना भी जीवित नही रहा जा सकता। नरम-गरम बिजली की तरह रुचि-अरुचि अपना चक्र बनाये रखती है और जीवन को सौदर्य प्रदान करती रहती है। अरुचि अपने-आपमे भयानक है ही नही। वह शहद की तरह अपनी कोई तासीर ही नही रखती। जिस तरह शहद अनुवाहक है, यानी गरम चीज के साथ गरम हो जाता है और सर्द के साथ सर्द, इसी तरह अरुचि भी अनुवाहक है। वह दास के साथ दास है और आजाद के साथ आजाद।

गाधीजी को ले लीजिये। उन्हे राज्य-शासन सम्भालने से अरुचि थी। पर वह थी स्वस्थ और सामयिक अरुचि। इससे उनकी अरुचि न उनकी आजादी मे बाधक बन पाई, न दूसरो की आजादी मे।

जिन लोगो ने राज्य सम्भाला, उनकी पूरी रुचि उसमे थी या नही, यह वे जाने! उनकी रुचि आजाद थी, या नहीं, यह भी ठीक-ठीक वे ही बता सकते है। एक पूर्ण आजाद व्यक्ति ही दूसरो की रुचियो को कसौटी पर कसने के योग्य होता है और हम अपनेको इतना आजाद नही समझते कि हम किसीकी रुचि या अरुचि को कसौटी पर कसकर कोई फैसला दे सके। हमने यत्र-तत्र जो इस तरह के उदाहरण दिये है, वे घटनाओ को लेकर दिये है। व्यक्तियो के बारे मे अगर हमने कहीं राय बनाई है तो ऐसे व्यक्तियों के बारे में बनाई है, जिन्हे हमने आखों से देखा है। उनके साथ घटों या हफ्तों सम्पर्क रहा है। पर फिर भी हम यह दावा नही कर सकते कि हम ठीक ही है।

हम जो कुछ कहते हैं वही कहते हैं, जो उन व्यक्तियों का हम-पर प्रभाव पडा। पाठको को यह तो याद ही रखना चाहिए कि हमारी अपनी रुचि और अरुचि भी हैं और उनसे हम उस समय बरी नही थे, जब उन व्यक्तियो से हम प्रभावित हुए।

अरुचि रुचि की तरह आजादी का आवश्यक भाग है। अरुचि-रहित होने की कोशिश नही करनी चाहिए। अरुचि-रहित होने का जो दावा करता है, वह झूठा दावा करता है। जो अरुचि-रहित है, वह या तो है ही नही और अगर कोई ऐसे व्यक्ति के होने का दावा करता है तो फिर वह व्यक्ति न ससारी हो सकता है, न ससारमय हो सकता है। उसका होना भी न होने के समान रह जाता है। अरुचि को लेकर हममे और आपमे झगडे हो सकते हैं, पर आजाद व्यक्तियो के बीच अरुचि भेद-भाव पैदा नही करती, भेद-भाव मिटाती है। अरुचि के बिना भेद-भाव मिटाया नही जा सकता। वास्तव मे अरुचि कुछ है ही नही। वह तो सहारे के आधार पर ही कुछ है। जैसा सहारा होगा वैसा ही वह कार्य करेगी।

अगर आप आजाद और आत्म-प्रेमी हैं तो आप खुद ही अपने अन्तस्तल को टटोलकर देख सकते है कि एक नही, सैकडो तरह की रुचि-अरुचि आपके अन्दर कार्य कर रही हैं। इतना ही नही, कभी कोई चीज, जो अरुचि का विषय बनी हुई थी, रुचि का विषय बन जाती है। जो रुचि का विपय थी, वह अरुचि का विषय बन जाती है। रुचि की तरह अरुचि भी नित्य परिवर्तनशील रहती है। इससे न डरने की जरूरत है, न बचकर भागने की। आपकी आजादी, आपका आत्म-प्रेम आपकी अरुचि को न आपके लिए कभी

हानिकारक सिद्ध होने देगा, न समाज के लिए।

: ८ :

घृणा—१

घृणा से घृणा तो सबको है। पर इससे बचा हुआ कोई नही है। यह भी जीवन के लिए जरूरी है। पर भारत मे एक दल ऐसा है, जो घृणा को पूर्णतया त्याज्य समझता है। उनके अनुसार घृणा व्यक्ति को छोड़कर तो नही भागती, उल्टी उसके पीछे पड़ जाती है।

ऐसे दल का नाम है अघोरी। उनका यह खयाल है कि घृणा के सर्वनाश मे एक महान् शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यह खयाल किसी अंश मे है तो ठीक, पर उसके किसी एक अंग को खीच ले जाना घृणा का नाश करना नही, उसे बलवान बनाना है। अघोरी लोग टट्टी-पेशाब से घृणा नही करते। वे पेशाब तक को पी लेते हैं। उससे स्नान कर लेते हैं। ऐसा ही बर्ताव वे मैले के साथ करते हैं। मैले के घोल मे वे स्नान कर सकते हैं और ऐसा करके वे समझते हैं कि उन्होंने घृणा को जीत लिया, या दूसरे शब्दों में उन्होने घृणा को अपने में से निकाल बाहर कर दिया।

हम एक से ज्यादा अघोरियों से मिल चुके हैं। उन्हे न कोई ऋद्धि प्राप्त थी, न कोई सिद्धि। उनसे वार्तालाप करने पर उनकी बुद्धिमत्ता की छाप भी हमपर नहीं पड़ी। हां, इतनी बात जरूर थी कि सैकड़ो ग्रामवासी उनके भक्त थे और उन्हें जरूरत से ज्यादा सम्मान देते थे। दो-एक ऐसे भक्त भी

थे, जो हरदम उनके दांये-बाये रहते थे और उनके खाने-पीने का भी प्रबन्ध कर देते थे। वे जरूर उनसे कुछ आशा भी रखते होगे।

जिस तरह घृणा के विपय मे लोग ऐसी खीच-तान कर बैठते हैं, वैसी खीच-तान सब विषयो मे बुद्धिमत्ता की द्योतक नही समझी जाती। एक दृष्टि से ऐसे कामो को अज्ञान का ही परिणाम माना जायगा। पर इस तरह की खीच-तान से लोग बच नही पाते, क्योकि ये खींच-तान पूज्य बनी हुई है और सारे ससार मे आदर पाती जा रही है। किसीका इस ओर ध्यान ही नही गया कि यह जबरदस्त दासता है। छत्तीस-छत्तीस घटे पानी मे पडे रहना, पचास-पचास घटे साइकिल चलाते रहना इत्यादि, इन सबके पीछे प्रसिद्धि की भावना ज्यादा और आजादी की भावना कम है। आत्म-प्रेम से उन्हे कोई सरोकार नही। यह इस समय हमारा विषय नही है। यह तो हमने इसलिए कह दिया कि ऐसा ही बर्ताव घृणा के साथ हो रहा है और इन सब कृत्यो का असर घृणा पर भी पडता है।

घृणा पर कुछ लिखने से पहले जन्मजात घृणा को समझना है। देखने मे तो आपको ऐसा मालूम होगा कि बालक घृणा करना जानता ही नही, पर यह बात आपने टट्टी-पेशाब को ध्यान मे रखकर कही है। लेकिन घृणा इतनी ही नही होती। घृणा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और वह बच्चे की प्रगति के साथ बढता जाता है। शुरू-शुरू मे यह उसमे बीज के रूप मे रहता है। धीरे-धीरे अकुर फोड़ता है और फिर बढता जाता है।

कितना ही छोटा बालक क्यों न हो, अनुचित गर्मी-सर्दी से घृणा करता है। मुह बनाकर घृणा का प्रदर्शन करता है। यह है उसकी स्पर्शेन्द्रिय घृणा। मुह मे बाल आ जाने पर थूक निकालकर अपनी घृणा को जताता है। अनुचित गध को छीक लेकर प्रदर्शित करता है। तेज रोशनी से उसे घृणा है, इसलिए उस घृणा को अजब तरह से आंखे बन्द करके दिखलाता है। तेज आवाज से भी उसे घृणा होती है। इसलिए बन्दूक की आवाज से वह उछल पड़ता है और इस तरह अपनी घृणा यानी नफरत का इजहार कर देता है।

बेशक, सामाजिक घृणा से वह अछूता होता है। वह उस-मे बाद मे आती है। श्मशान के बीभत्स दृश्य उसपर कोई असर नही डाल सकते। अस्पताल की चीर-फाड़ उसको विच-लित नहीं कर सकती। टट्टी-पेशाब से उसे घृणा होती ही नही। ऐसी नफरते उसमे बड़े होने पर पैदा होती हैं। ये अच्छी चीजें नही हैं। ऐसी घृणा त्याज्य है। वह त्याज्य ही समझी जानी चाहिए। आजाद और आत्म-प्रेमी ऐसी नफरतो से दूर रहता है। अगर ऐसा न हो तो वह न समाज-सेवा कर सकता है और न आजादी का प्रचार कर सकता है। डाक्टर लोग हम मे से ही तो होते हैं; पर न उन्हे पीप से घृणा होती है, न खून से। न थूक से घृणा होती है, न खखार से। टट्टी-पेशाब की जांच तो आएदिन डाक्टर करते हुए देखे जाते है। जिस काम को मामूली आदमी कर लेता है, उसे आजाद व्यक्ति क्यो नही कर लेगा? खुलासा यह कि ऐसी सामाजिक घृणा, जो सामाजिक नियमों से ही पैदा होती है, सामाजिक नियमों से ही खत्म कर दी जाती है।

घृणा के विस्तृत क्षेत्र को हमारे पाठको ने समझ लिया होगा। फिर भी मानसिक घृणा पर थोडा और प्रकाश डाले देते हैं। कारण यह है कि यो तो जितनी भी घृणाए हैं, सभी इन्द्रियों द्वारा होती हैं, पर मन अपनी अलग घृणाए पैदा कर लेता है। उनसे बचना बहुत मुश्किल है। आजादी और आत्म-प्रेम मे यह सिफत तो है कि वह इन नफरतो से भी व्यक्ति को ऊचा उठा देता है, पर कुछ तो ऐसी हैं कि दास अवस्था मे भी अगर उनका ज्ञान हो जाय तो छोड़ी जा सकती है। ऐसा करना आजाद होने मे सहायक होता है।

नीच लोगो से जो घृणा होती है, वह मानसिक घृणा है। चोरो, डाकुओ, जुआरियो, जारो, लम्पटो से की हुई घृणा इसी कोटि मे आती है। ये आज़ादी मे बड़ी बाधक होती हैं। आप लम्पटता से घृणा कर सकते हैं, पर लम्पट से घृणा करके उसकी लम्पटता मे वृद्धि ही करेंगे। इसीलिए किसी दुर्गुणी से घृणा करना उसमे दुर्गुणो की वृद्धि करना है। चोर से चोरी छुड़ाने मे न कभी पुलिस समर्थ हुई, न न्यायाधीश और न राजा, क्योकि तीनो ही चोर से घृणा करते हैं। यह है मानसिक घृणा, जो बहुत गहरा असर रखती है। इसलिए चोर चोरी छोडने की जगह या और कोई दुर्गुणी दुर्गुण छोडने की जगह, पक्का चोर और पक्का दुर्गुणी बन जाता है। यही आजाद साधु चोर से एक क्षण मे करा लेता है और दुर्गुणी से भी करा लेता है। क्यो? इसका जवाब सीधा-सादा है, क्योकि वह उनसे घृणा नही करता, दुर्गुणो से घृणा करता है। दुर्गुणो से घृणा हानिकारक नही होती। वह आजादी मे बाधक नही होती।

गुणावगुण से जो राग-द्वेष होता है, उससे आत्मा मे कपन

नही होता, अर्थात् आत्मा मे किसी तरह का हलन-चलन नही होता। या यों समझिये कि आत्म-शान्ति मे या आत्म-स्थिरता मे कोई बाधा नही पड़ती। इसके विपरीत गुणवान और दुर्गुणियो से राग-द्वेष करने से आत्मा मे विकार उत्पन्न हो उठते हैं और ये आजादी मे बाधक होते हैं और दासता के कारण होते हैं।

मा अपने रोते हुए बच्चे की ओर भी दौडती है, दूसरे के रोते हुए बच्चे की ओर भी दौडती है; पर इन दोनो दौडो मे जमीन-आसमान का अन्तर होता है। पहली अवस्था मे वह बहुत विचलित होती है। दूसरी अवस्था में बहुत कम या बिल्कुल नही। ये उदाहरण देकर हम यह बताना चाहते हैं कि आत्मा का विचलित होना क्या है? क्योंकि आत्मा का प्रश्न ऐसा प्रश्न है, जो करोडो के लिए समझने में आसान है तो करोड़ो के लिए समझने मे मुश्किल है। आत्मा के बारे मे कुछ भी कहना ऐसा है, जैसे आकाश या शून्य के बारे मे कहना।

मानसिक घृणा, बेशक, ऐसी घृणा है, जिससे आसानी से पीछा नही छूट सकता। पर हम पाठकों को यह विश्वास दिलाना चाहते है कि यह कठिन काम, आत्म-प्रेम को तो एक ओर रखिये, मामूली लौकिक प्रेम होने पर भी आसानी से हो सकता है। कोई स्त्री किसी पुरुष से आख लग जाने पर और कोई पुरुष किसी स्त्री से आंख लगाकर सैकड़ों घृणाओं से एकदम ऊचा उठ जाता है। कोई आदमी यह कहकर 'इश्क न पूछे जात-कुजात' बड़ी मर्म-भेदी बात कह गया है। जाति-भेद की घृणा मानसिक घृणा होती है। पर वह तो पलक मारते

ही छू हो जाती है। इसलिए जो लोग दासताओ मे फंसे हुए हैं और जो ऐसे कामो को असम्भव समझे हुए है, उन्हे निराश होने की जरूरत नही। घृणा छोड़ने के लिए किसी प्रयास की आवश्यकता नही। सर्वथा छोडने की तो उसे जरूरत भी नही; क्योकि हम शुरू से ही लिख चुके है कि घृणा जीवन के लिए जरूरी है।

जो आजादी की राह चल पडे हैं, उन्हे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि घृणा बेहद आवश्यक है। उसके बिना आजादी अगर मिल भी जाय तो टिक नही सकती। और वह घृणा, जो आवश्यक है, वह इतनी सूक्ष्म होती है कि उससे न अपनेको नुकसान पहुचता है, न किसी दूसरे को। उसकी सूक्ष्मता मन को स्वस्थ बना देती है। इन्द्रियो को बलवान कर देती है— बुराई के लिए नही, समाज की भलाई के लिए। और वही घृणा स्थूल रूप लेकर भयानक बन बैठती है और दासता के गढे मे पटक देती है।

: ६ :

घृणा—२

बिजनौर जेल मे जुम्मा नाम का एक डाकू था। मेरी उससे जान-पहचान ही नही, दोस्ती हो गई थी। वह जाति का मेहतर था और धर्म से मुसलमान था। उसका नाम तो मुसलमानी था, लेकिन कोई कैदी उससे घृणा नही करता था। कैदियो का अपना अलग धर्म होता है। उन दिनो, यानी सन् १६१८ मे, रोटी बनाने के काम मे ब्राह्मण ही लगाये जाते थे।

मेहतर का काम मेहतर, चमार, डोम, कंजर इत्यादि जातियां ही करती थी। पर अगर कोई मेहतर का काम खुद आगे होकर करना चाहता था, तो उसे वैसा करने दिया जाता था। मैने अपनी आंखों से देखा कि एक ब्राह्मण और एक ठाकुर ऐसे ही दो कैदी थे, जो मेहतर का काम स्वय आगे आकर किया करते थे। इसका कारण यह था कि मेहतर का काम करनेवाले को जी-भर रोटियां खाने को मिलती थी, और भी चीजें मिल जाती थी। बीडी का सुभीता हो जाता था। बाहर बगीचे मे घूमने को मिल जाता था।

यह भी एक तरह की आजादी थी। हां, जेलखाने की आजादी। ऐसी झूठी आजादी भी जब आदमी को घृणा से ऊपर उठा देती है, तो सच्ची आजादी उसे घृणा और भेद-भाव से कितना ऊंचा उठा देगी, इसका अन्दाजा नही लगाया जा सकता।

जोहो, जुम्मा कैदी हथकडियों को एक झटके मे तोड सकता था। यह सुनी हुई बात नही है। उसने मुझे तोडकर हथकड़ी दिखलाई। उसका यह दावा था कि सरकार कितने ही ताले लगा ले, कितनी ही हथकड़िया और बेडियां डाल दे और कितनी ही जेलखाने की दीवारे ऊंची करले, सिर्फ यह गारन्टी कर दे कि मैं अगर जेल से भाग जाऊं तो मुझे गिर-फ्तार नही करेगी, तो मैं जेल से भागकर दिखा सकता हूं। देखा आपने? बाहरी बंधन तोड़ना कितना आसान है? पर यही जुम्मा 'राम' कहते हुए डरता था। यह था उसका मान-सिक बंधन। 'राम' कहने मे उसे ऐसा लगता था, मानो वह नरक में जा गिरेगा। 'अल्लाह' कहने से उसे आनन्द मिलता था,

तसल्ली होती थी, पर आजादी की चाह ने सन् १६२१ मे यह मानसिक बंधन एकदम तोडकर फेक दिया था। 'अल्लाहो अकबर' और 'सत् श्रीअकाल' के नारे हिन्दू-मुसलमान दोनो के मुंह से ही नही, मन और आत्मा से निकलते थे। किसी तरह का भेद-भाव नही रह गया था। जिस तरह आजादी की चाह घृणा को नष्ट करती, भेद-भाव को मिटाती, ऊंच-नीचपन को उड़ाती चली जाती है, उसी तरह घृणा के दूर होने पर भेद-भाव के मिटने पर आजादी अपने-आप ठीक वैसे ही फूट निकलती है, जैसे वर्षा के जल से धरती मे हरि-याली के अकुर फूटने लगते हैं और सैकडो प्राणी आनन्द मे मगन हो जाते हैं।

सचमुच घृणा से दूर होने पर क्षण-भर मे आदमी कुछ-का-कुछ हो जाता है। यह बात हम पुराणो की कथा के आधार पर नही कह रहे। हमने अपनी आखो एक-दो नही, दस नही, हजारो-लाखो को क्षण-भर मे घृणा से ऊपर उठते देखा है।

आप आजाद बनना चाहते हैं ? यदि हा, तो घृणा से चिपके रहकर, भेद-भाव के जेलखाने मे बन्द रहकर, ऊंच-नीच की भावना मे डूबे रहकर, आजाद नही बन सकते। ये जजीरे परराष्ट्र की गुलामी की जजीरो से कही कडी जजीरे हैं। भूत कही नही है। वह मन मे रहता है। शंका ही भूत है, मनसा ही डायन है। ये वे बेडियां हैं, जो हमारे मन ने गढी हैं। इसलिए मन इन्हे आसानी से नही तोड़ेगा। अन्तरात्मा की सीधी आज्ञा पाकर ही वह इन बन्धनों को तोड़ फेक सकता है। अन्तरात्मा मन को ऐसी आज्ञा उसी समय देगा,

जब किसी कारण से आजादी की चाह तुम्हारे अन्दर प्रबल हो उठी होगी।

यह हम कह चुके हैं कि आजादी बाहर की चीज नही है, अन्दर की चीज है। यह एक ज्योति है, जो हरदम हरेक के भीतर जलती रहती है। उसे झूठा अभिमान, अनुचित क्रोध, गहरा लालच और भारी डाह ढके हुए हैं। यह ठीक है कि इनका नाश करना कठिन ही नही, बल्कि असम्भव है, पर ऐसे अवसर आते हैं, जब इस ढक्कन को ठेस लगती है, इसमे दरार हो जाती है। ज्योति इन दरारो मे से होकर फूट निकलती है और एकदम सारा ससार बदल देती है। इसलिए हर आजादी चाहनेवाले का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह छोटे-बडे किसी अवसर को न चूकने दे।

इस प्रकार की दृष्टि अभ्यास करने से प्राप्त नही होती। अगर प्राप्त हो भी जाय तो यह आजादी का अकुर फोड़ने मे सहायक नही हो सकती। वह तो एकदम अचानक ही पैदा होती है। गाय बच्चा देते ही दूध देने लगती है। बछिया को बरसो दोहकर आप दूध पा सकते हैं, पर बस तोले दो तोले। लेकिन ये सब न तो उसमें वात्सल्य ही पैदा करा सकते हैं और न पुत्र-प्रीति ही। इसलिए जब भी किसी मे देश की आजादी के प्रति प्रेम जाग जाय, उसके दूसरे क्षण ही उसमे घृणा दूर हो जाती है। भेद-भाव भाग जाता है, ऊच-नीच की भावना काफूर हो जाती है। ठीक है, ऐसे काम के लिए अवसर की जरूरत है, पर ऐसा कोई नियम नहीं है। कभी-कभी स्वयं ही अन्त.स्फूर्ति होती है और बैठे-बिठाये प्रेम-भावना

जाग उठती है और वही शुभ अवसर बन बैठती है। शुद्धोधन का पुत्र गौतम इसका उदाहरण है। यही बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

घृणा के मामले मे अपने-आपको धोखा कभी मत दो। आजादी के पथ पर किसीको भी धोखा देना दासता के पथ पर मुडना है। और फिर अपनेको धोखा देना तो दासता के सागर मे डूबने जैसा है। जब भी हम कोई आडम्बर रचते हैं, तब किसी-न-किसी को धोखा दे रहे होते है। कभी-कभी आडम्बर के द्वारा अपनेको भी धोखा दे रहे होते हैं। तब यह धोखा-देही घृणा दूर करने मे कैसे समर्थ हो सकती है ? अगर दिखावे के लिए ऐसा हो भी जाय तो वह आजादी की जनक नही हो सकती। इसलिए दिखावे के लिए घृणा का त्याग, घृणा करने से भी ज्यादा हानिकर है। घृणा करना छूट सकता है, लेकिन घृणा न करने का ढोंग छूटना कठिन ही नही, असम्भव भी हो जाता है, क्योकि इससे यह होता है कि घृणा की जडे शनै.-शनै गहरी से और गहरी होती चली जाती हैं।

पुलिस की वर्दी इस बात का चिह्न नही है कि इस वर्दी मे छिपा आदमी सबल देह रखता है। वह तो इस बात का चिह्न है कि इस वर्दी के पीछे कोई बलवान शक्ति है, पर वर्दी इस बात का भी कोई पक्का सबूत नही है। उसे बदमाश, चोर, उचक्का कोई भी पहन सकता है और पहनकर आएदिन लोग धोखा देते हुए भी देखे जाते हैं। यही हाल साधु के बाने का है। यही हाल किसी भी ऐसे बाने का है, जिसका आजादी या ईमानदारी से सम्बन्ध है। इन सब ढोगो से बचना

बेहद जरूरी है। कही घृणा न करने के इस ढोंग मे जा फंसे तो न आप घर के रहेंगे, न घाट के।

घृणा के किसी रूप मे रहते हुए आप प्रेम-बेल को कैसे सरसा सकेंगे ? और उस बेल के बिना किसमे आप आजादी के गुच्छे सरसा सकेंगे ? फिर किस तरह आप आजादी के सुस्वाद रस का पान कर सकेंगे ? घृणा इस राह मे सर्वथा त्याज्य है।

: १० :

झिझक

जिस तरह कायरता का दूसरा नाम नपुंसकता है, उसी तरह झिझक का नाम है नारीपना। झिझक हम सबमें है, चाहे कोई व्यक्ति दास हो या आजाद। इसलिए इसकी असलियत को समझ लेना निहायत जरूरी है। कायरता और झिझक मे जमीन आसमान का अंतर है। झिझक कायरता से ऊंचे दर्जे की चीज है। झिझक कभी-कभी दास को ऊंचे उठने में सहायक होती है। इसलिए झिझक से सर्वथा बचने की जरूरत नही। उसके स्थूल रूप मे ही बचना चाहिए। झिझक हर बच्चा जन्म से ही अपने साथ लाता है। पशु-पक्षियों मे इस झिझक का तमाशा हरकोई देख सकता है। चिड़िया झिझकते-झिझकते ही झिझक छोड़ती है। कुत्ता और उसके बच्चे आदमी के साथ, सालों रहने पर भी, उसके पास आने मे झिझकना नही छोड़ पाते हैं। पत्थर की मूरत के पास भी हिंस्र पशु झिझकते-झिझकते आते हैं।

झिझक बेशक बुरी चीज है। पर उसे सर्वथा त्यागने की बात भी बेहद बुरी है। प्रकृति की देन बेमतलब नही होती। सिर होना जरूरी है, पर सिर का मामूली से ज्यादा बडा हो जाना जितना हानिकारक है, उतना ही मामूली से छोटा होना भी। इसी तरह झिझक पैदायशी झिझक से ज्यादा खराब और कम भी खराब है। वह झिझक हमको दुनिया मे बनाये रखने के लिए निहायत जरूरी है। सन्तो-महन्तो ने और धर्म-ग्रथो ने इससे जो मुक्ति पाने की बात कही है, उसे अगर सच मान लिया जाय तो फिर इसका यही मतलब होगा कि आदमी न दीन का रह जायगा, न दुनिया का। अगर आदर्श इसीको कहते है कि वह लक्ष्य जहा कभी न पहुचा जा सके, तो सत-महन्तो और धर्म-ग्रथो की बात हमारे सिर माथे। लेकिन अगर यह कहा जाय कि इस आदर्श तक पहुचा जा सकता है या पहले कुछ लोग पहुच चुके है तो हम यह कहेगे कि इस अवस्था को पहुचकर वे या तो पत्थर बन गये होगे या ससार मे रहे ही न होगे।

आजाद और आत्म-प्रेमी व्यक्ति को पग-पग पर यह झिझक सहायक होती है। झिझक जिसके पीछे कमजोरी रहती है, वह और चीज होती है। जिसके पीछे आत्म-शक्ति का ज्ञान रहता है, वह दूसरी चीज होती है।

दास की झिझक और आजाद की झिझक मे जमीन आसमान का अन्तर होता है। दास की झिझक दुनिया के सामने आ जाती है। कोई उसे नारी कह सकता है, जो झिझक का दूसरा नाम है। आज़ादी का नारीपन दुनिया के सामने मरदाने रूप मे आता है। दास मे जब नारीपन जागता है, तब

वह उसकी सारी देह पर काबू पा लेता है और उसे तदनुकूल क्रियाए करनी पडती हैं। आज़ाद पुरुष मे नारीपन के जागने का सवाल ही पैदा नही होता। वह तो उसमे इस तरह मिला-जुला बैठा रहता है जैसे महादेव का वह चित्र, जो आधा नर के रूप मे और आधा नारी के रूप मे दिखाया गया है। यही कारण है कि आजाद का नारीत्व दूसरो के बेजा नारीत्व को नष्ट करने मे सहायक होता है। आजाद की झिझक कुछ ऐसी झिझक होती है, जिसे देख दूसरो की झिझक अपने आप काफूर हो जाती है। बच्चे भी तो झिझकती हुई मां को आगे बढते देख अपनी झिझक छोड़ देते हैं। अगर मा पूरी तरह से आजाद हुई तो उसमे झिझक होगी ही नही। और जो सूक्ष्म होगी तो वह स्वाभाविक होगी। ऐसी मा के बच्चे भला क्यो झिझकने लगे!

हम इस विषय को ज्यादा बढ़ाना मुनासिब नही समझते। पर झिझक या नारीत्व सचमुच ऐसा गुण है, जो स्थूल रूप मे सबपर छाया हुआ है। पर इस पर जितना कहा जाय उतना थोड़ा है। यहा तो हम उन्हीको आगाह करना चाहते हैं जो आजाद बन चुके हैं, आत्म-प्रेमी हो चुके हैं और अपनी सूक्ष्म झिझक से या अपने सूक्ष्म नारीत्व से झिझक रहे हैं।

: ११ :

शोक

सब धर्म-ग्रथो का यही कहना है कि शोक नही करना चाहिए। सोच मे पड जाना, अफसोस करना, पछताना, दुखी होना, सब शोक मे शामिल है। ऋषि-मुनियो ने तो यहातक कह डाला है कि पडित वह है, जो शोक न करे। सारे धर्म-ग्रथ इस राय से सहमत हैं, हम भी सहमत हैं, लेकिन सर्वथा सहमत नही हैं। कोई आजाद सर्वथा शोक-रहित नही हो सकता। हा, पत्थर की मूरत हो सकती है। शोक-रहित को समझाने के लिए हम किसी जीवित व्यक्ति को पेश नही कर सकते। मृत पुरुष या पुराण पुरुष को ही पेश कर सकते हैं। इनकी अनुपस्थिति मे पत्थर की मूरत हमारे सामने है ही।

कलाकार ने भले ही पत्थर की मूरत को शोक-रहित गढा हो और भले ही ऋषि-मुनियो ने देवी-देवता को शोक-रहित माना हो और भले ही ग्रथकारो ने अपने-अपने ग्रथो मे शोक-रहित व्यक्तियो को चित्रित किया हो, पर आजकल के भक्तो ने देवी-देवताओ को मन्दिर मे आसू टपकाये बिना नही रहने दिया। कितनो ही को आसू बहाते हुए भगवान का ही साक्षात्कार हुआ, पर इसे छोडिये।

जीवन मे शोक उतना ही आवश्यक है, जितना प्राण। प्राण हवा के सिवा और कुछ नही। आत्मा के लिए हवा ज़रूरी नही। पर बिना हवा के आत्मा किसी देह मे रहती नही, इसी तरह देहधारी बिना शोक के नही रह सकता।

गाधीजी ने एक बार कहा था कि अगर मुझ पर आफत आ जाय तो भी मैं सत्य से विचलित नही होऊंगा। रही रोने की बात या आंखो से आंसू बहाने की बात, सो वह तो देह का धर्म है। देह अपना धर्म निभाती रहेगी और मैं अपना धर्म निभाता रहूंगा।

यहा कोई देह को आत्मा से सर्वथा भिन्न न मान ले। यह हम भी मानते और जानते हैं कि आत्मा रोता नही है। पर देह भी नही रोती। मृतक की आंखे आसू नही बहाती हैं। और अगर किसी कारण मृतक की आख से पानी निकलने लगे तो उसे आसू की संज्ञा नही दी जाती। फिर जब न आत्मा रोता है, न देह, तब रोता कौन है? यह भी याद रहे कि आंखों से आसू तबतक नही निकलते, जबतक उसके पीछे कोई भाव न हो। फिर चाहे वह हर्ष का हो या विषाद का। हर्ष-विषाद शोक के ही दो पहलू हैं। शोक एक भाव है। भाव भले ही मन मे उठते हो, पर आत्मा के इशारे पर उठते हैं। इसलिए गाधीजी के आसू गाधीजी के ही रहेंगे और उनके पीछे उनका शोक भी रहेगा।

पाठको ने समझ लिया होगा कि शोक भी जीवन के लिए अत्यावश्यक है। ऐसा शोक बंधन का कारण नही होता। इस शोक के लिए हम सोते हुए छोटे बालक पेश कर रहे हैं, पर वह उसका उचित उदाहरण नही है। छोटा बालक सोते हुए मुस्कराता भी है और विसूरता भी है, और ये दोनों परिवर्तन उसमें जल्दी-जल्दी होते हैं। इस प्रकार का शोक सर्वोत्तम शोक होता है। यह हानिकर नही होता, स्वास्थ्यकर होता है। बच्चे के ऐसे शोक को लेकर माताओं ने एक कहानी घड़ रखी

है, वह यह कि बच्चे को सपने मे बेमाता (विधना) दिखाई देती है। जब वह यह कहती है कि तेरी मा मर गई तो वह बिसूरने लगता है और जब वह यह कहती है कि तेरी मा जी उठी तो वह हँसने और मुस्कराने लगता है। इस दन्तकथा से हमे क्या लेना-देना ! यहा तो हमे केवल यह बताना है कि इस सर्वोत्तम शोक से भी परमोत्तम शोक आजाद व्यक्ति का होता है। वह शोक उसकी आजादी मे बाधक नही होता, सहायक होता है। होम्योपैथी के उसूल के अनुसार जैसे का तैसा ही इलाज होना चाहिए। अगर यह ठीक है तो आजाद का शोक दास के शोक का निवारण करता है।

शोक को देह का धर्म कहकर यही कहा जाता है कि यह देहधारी का धर्म है। ग्रामोफोन का शोक, शोक-निवारण मे सहायक नही हो सकता। आजाद व्यक्ति का शोक ही यह काम कर सकता है।

शराब शोक को भुला देती है। शोक से ध्यान को हटा देती है। शोक को हटाती नही है। तरह-तरह के नाटक, सिनेमा भी यही काम करते हैं और यही काम वे सब बन्धु-बाधव और इष्ट-मित्र भी करते हैं, जो शोक-प्रदर्शन करने के लिए आते हैं।

इन सबसे शोक बढ भी सकता है, घट भी सकता है, मिटा हुआ-सा भी दिखाई दे सकता है, पर मिट नही सकता। मिट नही सकता, अर्थात् दु ख देना नही छोड सकता। तभी तो 'शोक छोड़ो' का शोर मचाया गया है, पर किसी भी तरह की दासता रहते शोक के दु ख से छुट्टी हासिल नही की जा सकती। उसके दु.ख को नष्ट करनेवाली तो आज़ादी और

आत्म-प्रेम ही है। आज़ाद व्यक्ति का शोक जली हुई रस्सी के वट के समान होता है। इसलिए आजाद व्यक्तियों और आत्म-प्रेमियों को स्वाभाविक शोक से बचने की आवश्यकता नहीं। वह आज़ादी की शान है, आत्म-प्रेम की पहचान है।

: १२ :

भय

भय यानी डर बहुत बुरी चीज है। इसीका एक नाम शंका भी है। किताब के शुरू में ही हम इसकी बुराई लिख चुके हैं। पर यहां तो हम यह बताने जा रहे हैं कि भय आजादी का रक्षक है। भय आज़ादी की जान है। उसके बिना आज़ादी, आजादी नहीं। दासों का भय मिटाने के लिए आजाद का भय ही होम्योपैथी की दवा का काम करता है। अभयदान जो आजाद का स्वभाव है, वह निर्भय होकर दिया ही नहीं जा सकता, जबतक स्वाभाविक भय आदमी के पास न हो।

निर्भयता का सर्वोत्तम उदाहरण दस-पन्द्रह दिन का जना छोटा बालक है। दूध-पीते बालक भी निर्भय ही माने गये हैं। सांप, शेर किसीका डर उन्हें नहीं लगता। ठीक है, ऐसी निर्भयता की जड़ में अज्ञान रहता है। अनुभवहीनता रहती है। पर उसमें हमें क्या लेना-देना! हम यहां निर्भयता की सिद्धि नहीं कर रहे। हम तो यह कहना चाहते हैं कि इतना निर्भय बालक भी भय रखता है।

'भय रखता है' ये शब्द हमने सोच-समझ कर कहे हैं।

वडे आदमी भय नही रखते, भयभीत होते हैं। इन्हे डरपोक कहा जा सकता है। कायर कहा जा सकता है। ये कभी-कभी भयानक हो उठते हैं। वडे-वडे अन्याय कर वैठते है। दास जो ठहरे। छोटा वालक भयभीत नही होता। उसे डरपोक नही कहा जा सकता। उसे कायर नही कह सकते। वह भयानक कृत्य नही कर सकता, क्योंकि वह भय रखता है। भय उसमे स्वाभाविक है। वह उसका रक्षक है। जितनी आजादी उसे हासिल है, उसकी वह निशानी है। यो समझिये कि भय उस वच्चे का प्राण है, उसकी जान है।

आवाज़ होने पर बच्चा अपना वदन सिकोड लेता है। आख की रक्षा करने के लिए पलक मारता है। और भी इसी तरह की क्रिया करता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उसमे भय विद्यमान है। सोते-सोते चौंक पडना, उछल पड़ना, इस बात के चिह्न है कि भय अन्तस्तल मे भी विद्यमान है। ठीक है, यह भय पूर्ण आजादी का द्योतक नही, फिर भी बच्चे जितना आज़ाद अगर मनुष्यो मे ढूढा जाय तो शायद ही कोई मिलेगा।

इस स्वाभाविक भय से कोई मनुष्य वचा हुआ नही है। यह भय स्वास्थ्यप्रद होता है, हेय नही है, त्याज्य नही है। और न उन भयो का बीज है, न उनसे कोई सम्बन्ध रखता है, जो आदमी ने गढ रखे है। उनको भय की सज्ञा दे दी गई है, पर वे सब भय से अत्यन्त नीचे दर्जे की चीजे हैं, सर्वथा हेय है, दासता के चिह्न हैं, अज्ञानता के द्योतक है और मूर्खता-वर्धक हैं। जैसे भूत-प्रेत का भय, कल्पना के गढे देवता

का भय, देवों के देव महादेवों का भय, परलोक का भय, नर्क का भय इत्यादि।

स्वाभाविक भय हम सबकी रक्षा करता है। तोप की आवाज़ से उचक उठना दास के लिए भले ही बुरा हो, पर आजाद के लिए बुरा नहीं। ऐसा क्यो? इसलिए कि दास व्यक्ति उछलकर ही नहीं रह जाता। वह उसी निर्मल भय पर गन्दे भय के महल खड़े करने लगता है और दुख-सागर में डूब जाता है। आजाद ऐसा नही करता।

पुराणो में तपस्वियो के बारे मे जो ये कथाएं हैं कि उन्हे हिंसक पशु खा रहे है और वे अचल बैठे हैं, वे इस बात का द्योतक नहीं हैं कि वे लोग सर्वथा निर्भीक थे। अव्वल तो ये सतियों की कथा की तरह सत्य ही नही हैं और अगर सिपाहियो की कथा की तरह सत्य भी हों तो उनके पीछे लोभ और लालच की भावना रहनी चाहिए, फिर वह चाहे परलोक का हो, या स्वर्ग अथवा मोक्ष का हो,। पर यहां हमें असल बात यह जाननी है कि जब उनपर हमला हुआ तब उनमें स्वाभाविक भय उत्पन्न हुआ या नही? नही हुआ तो वे आजाद नही थे। स्वाभाविक भय होना ज़रूरी है। ध्यान में लीन मनुष्य को जब भी कोई छेड़ता है तो उसे रोमाच हो आता है। हां, समाधिस्थ अवस्था देह को भय-रहित कर देती है। पर उस समय तो देह ही अपना धर्म खो बैठती है।-हम मनोविज्ञान की गहराई में ज्यादा न जाकर यहां इतना कहना ही मुनासिब समझेंगे कि देह उस समय पथरा जाती है, जड़ बन जाती है। फिर भय का सवाल ही नहीं उठता। हमने अपनी आखों समाधिस्थ व्यक्ति को देखा है।

अतः भय आजादी का चिह्न है। उसे सर्वथा दूर करने की जरूरत नही। उससे आजादी मे बाधा नही पड़ती। आत्म-प्रेमी स्वाभाविक भय का आदर करता है। उसको अपनाता है। उससे बचने की कभी नही सोचता।

: १३ :

समझकर मानना

पेड के बीज मे पेड मौजूद रहता है, उसी तरह आदमी के कीटाणु (स्पर्म) मे पूरा आदमी निवास करता है। पूरे आदमी से मतलब है सचेतन, सज्ञान। जब यह बात है, तब बालक के रूप मे पैदा होनेवाला मनुष्य अज्ञानी कैसे कहा जा सकता है? पर सारा जगत बालक को अज्ञानी कहता चला आया है; कहता है और कहता रहेगा। बात यह है कि असली ज्ञान तो बालक मे पूरा मौजूद होता है, पर व्यावहारिक ज्ञान उसे नये सिरे से करना ही पड़ता है। इसलिए उसे व्याव-हारिक ज्ञान की अपेक्षा अज्ञानी कहना ही पडता है।

वट वृक्ष की शाखा पेड से रस प्राप्त करती है। पत्तों को हरा रखती है, कोपले फोडती है, और बिना कली-फूल के फल पैदा कर लेती है, अर्थात् मूल रूप से वह पूरी तरह पेड है। पर उसी शाखा को काटकर आप दूसरी जगह रोप दीजियेगा, वह मुरझा जायगी, क्योकि उसे व्यवहार-ज्ञान नही है। वह जानती ही नही कि धरती से रस कैसे खीचा जाता है। पर जल्दी ही वह अनुभवी बन जाती है। धरती मे उसकी जड़े फैलने लगती है और उनसे रस खीचकर अपनेको हरा-

भरा कर लेती है। पूरा पेड बन बैठती है। आदमी का बच्चा भी पैदा होने के दूसरे क्षण से ही अनुभव करने लगता है। उसका रोना तक निरुद्देश्य कर्म नही होता। उसके पीछे कामना रहती है। उस कामना की वह पूर्ति करता है। प्रकृति उसका एक और महान कार्य कर डालती है। वह उसके रोदन से उसके फेफडो को सशक्त बनाती है।

अब आपने देख लिया होगा कि नवजात बालक भी बिना सोचे-विचारे कुछ नहीं करता। और फिर यह तो मानना ही पड़ेगा कि वह बिना सोचे-समझे कुछ नही मानता। न कभी माननेवाला है।

ऊपर ऐसी बात कही गई है, जिसे पाठक जल्दी ही नही मान लेंगे और यह हमारे मतलब की बात होगी। इस अध्याय का शीर्षक ही है 'समझकर मानना'। आम तौर से देखा यह जाता है कि बालक को जो कहा जाता है, वह मान लेता है। बिना प्रयास वैष्णव का बालक वैष्णव, जैन का बालक जैन, मुसलमान का बालक मुसलमान और ईसाई का बालक ईसाई धर्म का विश्वासी बन बैठता है। तब समझकर मानने की बात कहा रह गई।

शंका दुरुस्त है। फिर उसका समाधान यह है कि ऐसे सब बालक वैष्णव, शाक्त इत्यादि होते हैं नाम के लिए। इन्हे उस धर्म का ज्ञान नही होता है और उसके अनुसार आचरण तो उनसे कोसो दूर रहता है। इसलिए यही मानना पड़ेगा कि उन्होने कुछ माना ही नही।

हमारी बात ठीक है, इसका प्रमाण क्या है ? प्रमाण यह कि किसी बालक ने आग को अगर गरम माना है तो उसकी

मां ने उसे कभी बताया था कि आग गरम होती है। उसने तो आग मे अपनी अगुली एक से ज्यादा बार जलाकर और रोकर ही यह पाठ हृदयस्थ किया है कि आग गरम होती है और इतनी गरम होती है कि उसे आदमी की देह सहन नही कर सकती।

आज्ञा न मानने मे बालक प्रसिद्ध है। ऐसा करके वे कोई पाप नही कर रहे होते, धर्म ही कर रहे होते है। समझकर मानने का सिद्धान्त उन्नति के लिए अत्यावश्यक है। ऐसा करके वे उसी सिद्धान्त का आदर कर रहे होते हैं। उन गढवालियों ने, जिन्होने निहत्थे पठानों पर गोली चलाने से इन्कार किया था, न्याय-धर्म का तो पालन किया था, पर कमाण्डर की आज्ञा का उल्लघन किया था। इस कारण उन्हे लाल फाटक की हवा खानी पडी। ऐसा ही घर के बालको के साथ होता है। आज्ञा न मानने पर उनसे कारण नही पूछा जाता। उन्हे तुरन्त दण्ड दिया जाता है। हुक्म मानने के लिए उन्हे मजबूर किया जाता है और इस तरह उन्हे ठूठ और मूर्ख बनाया जाता है। ऐसा करना अनुन्नत समाज के लिए आवश्यक है।

आज के समाज को अनुन्नत समाज कह डालना बढकर बोलना है। पर जिसने दो महायुद्ध देखे हो, जिसे जलियावाला बाग-काण्ड का अनुभव हो और जिसने इसी सन् १९६० मे जलियावाला बाग-काण्ड की अफ्रीका मे दूसरी आवृत्ति का हाल सुना हो, उसे बडबोला नही समझा जाना चाहिए। इसे मानने से इन्कार करना कि बिना समझे किसीको मानने के लिए बाध्य करना सबसे बड़ा पाप है, समाज की उन्नति से इंकार करना है।

दुनिया के सारे धर्म जाने-अनजाने यही काम कर रहे हैं, अर्थात् विना समझाये लोगो को मानने के लिए मजबूर कर रहे हैं। यही वह जड है, जिसकी शाखाएं हैं गुरुडम, पूंजीवाद, सेनावाद इत्यादि। फौज और पुलिस के सिपाही को चू करने का अधिकार नही और ये दोनों चूं किये विना न्याय-अन्याय सवकुछ कर डालते हैं। इसका एक ही मूल कारण है कि वालपन मे उनसे ऐसी आज्ञाएं मनवाई गई, जो उनकी समझ मे ठीक नही थी और इस तरह मा-वाप और समाज ने इन वालकों को जाने-अनजाने पक्का दास वना दिया, जिन्हे प्रकृति ने पैदा तो स्वच्छन्द किया था, पर उन्हे सयम का पाठ पढ़ाकर आजादी के सच्चे सैनानी वनाना चाहती थी।

समझकर मानना कितना जरूरी है, इसका महत्व हमारे पाठक जरूर समझ गये होगे। अगर इस पाठ पर आरम्भ से जोर दिया जाता रहता तो आज समाज चाहे इतने चमत्कारी आविष्कारो से विभूपित न होता, पर इतना डरा हुआ और दुखी भी न होता, जितना वह आज है। आज का मनुष्य पहले से ज्यादा सवल नही है, वहुत कम वलवान है। हा, उसकी लाठी मशीनगन जरूर वन गई है। आज के आदमी की कोई भी इन्द्रिय पहले के आदमी से ज्यादा वलवान नही है, उल्टी वेहद निर्वल है। हा, ऐनक जरूर माइक्रोस्कोप और टेलिस्कोप वन वैठी है। उसके कान कुत्ते से भी ज्यादा दूर का सुन सकते है। पर यह सव रेडियो की मदद से, और ऐसे रेडियो की मदद से, जिसका सुननेवाले को कोई ज्ञान नहीं। इस वेढगे तरह की उन्नति का परिणाम आज जितना भयानक रूप ले चुका है और जितना भटक रहा है, उतना न कभी

भयानक हुआ था और न खटका था। इस भय और खटक को अगर दूर किया जा सकता है तो सिर्फ 'समझकर मानने' के सिद्धान्त को मानकर, अर्थात् जबतक तुम्हारे गले न उतर जाय, किसी बात को मानना नही चाहिए।

यहा यह शका हो सकती है कि यह तो बडा टेढा सवाल है। ऐसा करने से समाज मे अव्यवस्था पैदा हो जायगी। हुल्लड़ मचने लगेगा। शका किसी हद तक ठीक है, पर आज हुल्लड से भरे, जगह-जगह विप्लव होने और गोली चलने-वाले इस ससार मे ऐसा डर भी किसलिए? हम ऐसे लोग अपनी आखो देख चुके है, जो अहिसात्मक असहयोग आन्दोलन को महाभयानक समझते थे और उससे ऐसे ही दूर रहे, जैसे कोई आग और साप से दूर रहता है। पर उस भयानक आन्दोलन ने तो भारत को किसी-न-किसी अश मे आजादी दिला दी। इसलिए समझकर माननेवाला सिद्धान्त अमल मे आने से इतना भयानक सिद्ध नही होगा, जितना लोगो ने मान रखा है।

समझकर मानने से आजादी के पौधे को पानी मिलता है, धूप-चादनी मिलती है, हवा मिलती है, घूमने के लिए खुला आकाश मिलता है और साथ ही ठीक विचार करने की शक्ति आ जाती है, जो शक्ति आज एकदम कुठित हो गई है। एक तरह से हमारे सोचने के लिए कुछ रह ही नही गया। धर्म की बात है तो वेद देख लीजिये, पिटक देख लीजिये, इन्जील देख लीजिये, कुरान देखिये, ताजा-ताजा सत्यार्थ प्रकाश देखिये। मतलब यह कि अपनी बुद्धि पर सोचने का ज़रा भी जोर न डालिये। राजनीति की बात है तो मैकॉले पढिये, मार्क्स पढिये। नीति

की बात है तो रूसो पढिये, कारपैन्टर पढिये, मनु पढिये। नये पढने हों तो कबीर पढिये, पर खुद कुछ न सोचिये। थोडे में यह कि कोई विषय क्यों न हो, सबके लिए ग्रंथ मौजूद है। ग्रंथों की अनुपस्थिति मे उनके जानकार पडित मौजूद हैं। अगर मौजूद नही हैं तो आपकी अपनी बुद्धि और आपकी सोचने की शक्ति।

इसीका यह परिणाम हुआ है कि हम बस लड़ना-भर जानते हैं। लड़ने के बाद शान्त होकर आपस मे निबटारा करना नही जानते, क्योकि हम सोचते ही नही। यह काम हमने वकील के सुपुर्द कर रखा है। डिप्टी कलक्टर या मुसिफ के सुपुर्द कर रखा है और इस तरह के विचार का ईश्वर हमने सुप्रीम कोर्ट को मान रखा है, क्योकि उसकी बात हमे माननी ही पडती है।

इसीका यह परिणाम हुआ है कि हम बीमार पडने पर यह सोचने की कोशिश ही नही करते कि बीमारी हमारे पास आई क्यों? यह हमारा काम ही नही। यह काम डाक्टर के सुपुर्द है। हकीम-वैद्य के सुपुर्द है। हम बिना सोचे-समझे वहा दौड़ते हैं और वह मानते है, जो वह कहता है। यह तो आएदिन होता है कि एक आदमी पूर्ण स्वस्थ है, पर चूकि डाक्टर उसे बीमार कहता है, इसलिए उसे अपनेको बीमार मानना पड़ेगा और दफ्तर के सब अफसरो को उसे बीमार समझना पड़ेगा। उसे छुट्टी देनी होगी। वह दिन दूर नही है, जब डाक्टर के यह सर्टीफिकेट देने पर कि तुम मर गये हो, तुम्हें अपने को मरा हुआ समझना पड़ेगा और ऐसा ही दफ्तर के अफसरों को समझना पड़ेगा। सरकार को भी यही मानना होगा।

इसीका यह परिणाम हुआ है कि आप भले ही कितने ही योग्य क्यो न हों और कितनी ही योग्यता अपने अफसर के सामने क्यो न प्रदर्शित कर दिखाये, लेकिन वह आपको अपने दफ्तर मे हरगिज जगह नही देगा, क्योकि यूनिवर्सिटी का रजि-स्ट्रार यह कहता है कि आप कुछ नही जानते। इस तरह की दुनिया मे रहकर अगर आप सुखी हैं, तब तो हमारा मन यह कहावत पुकार उठेगा—'सबसे भले विमूढ जन, जिन्हे न व्यापे जगत गति।'

समझकर मानिये, नही तो आजादी आपके पास नही फटकेगी। जो आजाद हैं, जो आत्म-प्रेमी हैं, वे समझकर ही मानते हैं। इसलिए उनका आज के धर्मो मे से कोई धर्म नही होता। उनका तो धर्म, धर्म ही होता है। उसके साथ कोई उपाधि नही होती। कहिये, आपका यही तो धर्म है। यदि है, तो आप आजाद है और आत्म-प्रेमी भी हैं, और आत्म-श्रद्धा-वान तो हैं ही।

: १४ :

जानकर मानना

आजाद हो या दास, जानकारी से कोई खाली नही होता। यह भी ठीक है सब-की-सब जानकारी जानी हुई नही होती। जानकारी का सबसे बडा भाग कल्पित होता है। उससे कम भाग श्रुत यानी सुना हुआ होता है। बहुत ही कम भाग ऐसा होता है, जो हमने कर्म करके जाना और सीखा होता है। जो

जितना ज्यादा कल्पित और श्रुत भाग पर भरोसा करता है, वह उतना ही दासता मे फंसा हुआ होता है । कल्पित और श्रुत भाग का अभिमान धोखे की चीज है। वह हमसे दूर तो नही होगा और दूर न होने से कोई नुकसान भी नही है। ध्यान तो इस बात का ही रखना चाहिए कि हम उस जानकारी का उपयोग इस तरह न करें, जिस तरह जानी हुई जानकारी का करते हैं।

'जानी हुई जानकारी से' हमारा मतलब है उस जानकारी से, जो हमने काम करते-करते प्राप्त की है। वही जानकारी ऐसी है, जो आजादी मे सहायक होती है। यह सबको मालूम है कि लडाई फौज के सिपाही जीतते हैं। पर जीत का सेहरा सेनापति के सिर पर बाधा जाता है। देखने मे तो ऐसा मालूम होता है कि यह बडा अन्याय है। जीत का यश तो सिपाहियों को मिलना चाहिए था। अगर हम थोडी देर के लिए ऐसा मान भी ले तो फिर हमे यह मानना पड़ेगा कि जीत का सेहरा लाठियो के सिर या तलवार-बन्दूको के सिर बंधना चाहिए और उन्हीको जीत का यश मिलना चाहिए, न कि सिपाहियो को, क्योकि उनकी मदद से ही नही, उन्हींसे लड़ाई जीती जाती है। पर ऐसी बात कोई मानने को तैयार नहीं होगा। सब जानते हैं कि लडाई के हथियार अजानकार के हाथ मे उल्टी उसीकी जान ले बैठते हैं। सिपाही इकट्ठे होकर लड़ाई नही जीत सकते। सम्भव है, आपस मे लडकर खुद ही जान गवा बैठे। लडाई के दांव-पेचों की जानकारी, किताबी या सुनी हुई नही, सच्ची जानकारी सेनापति को ही होती है। सिपाही जवान होते हैं। सिपाहियों का दूसरा

नाम ही जवान है। वे न बूढ़े होते हैं, न बूढे होने चाहिए। इसके विपरीत सेनापति बूढा ही होता है। जापान का नियोगी ऐसा ही सेनापति था। रूस-जापान मे युद्ध होते समय वह नव्वे वर्ष का था। अपने-आप घोडे पर नही चढ सकता था। दो सिपाहियो की मदद से घोडे पर सवार होता था। एक बार एक नया आया हुआ सिपाही यह देख हँस पडा ! उससे जब सेनापति ने हँसने का कारण पूछा तो उसे कहना पडा कि आप जब घोडे पर चढ नही सकते तो लडेगे क्या। इसके जवाब मे उसने यही शब्द कहे थे कि हा, मुझे घोडे पर चढाने के लिए दो आदमी दरकार होते हैं, लेकिन घोडे से गिराने के लिए हजारो की जरूरत होती है। और ऐसा कहने के बाद वही सेनापति उसी दिन मुकदन का किला फतह करके जीवित लौटा—वह किला जो किसी तरह फतह ही नही हो रहा था। नियोगी जाना हुआ जानकार जो था।

आज की शिक्षा-पद्धति कुछ इस ढग की हो गई है कि हममे जानकारी ठूस-ठूस कर भर दी जाती है। कराई रत्ती-भर भी नही जाती। उसके बल पर हम दासता का कार्य उत्तम रीति से कर सकते हैं, आजादी का काम नही। व्यापार विद्या के स्नातक यानी बी० कॉम और एम० कॉम बहुत कम पढे सेठो की नौकरी मे ही मिल सकते हैं, स्वतन्त्र दुकान खोलकर पाव जमाने की बात नही सोच सकते, क्योकि उन सबकी जानकारी किताबी, सुनी या काल्पनिक होती है, अपनी जानी हुई नही होती।

शिक्षा के प्रत्येक भाग मे यह कमी रहती आई है। मालूम तो ऐसा होता है कि यह कमी जान-बूझकर रखी जाती है।

अंग्रेजी सरकार पर यह दोप साफ-साफ इसलिए मढा जाता रहा कि वह विदेशी थी। पर शिक्षा-पद्धति तो आज स्वराज्य मे भी वैसी ही है, और यह कहते हुए हमे तनिक भी झिझक नही होती कि पुराने समय से ही शिक्षा-पद्धति इसी ढंग की रहती आई है। पुराणो और कहानियों मे ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं कि गुरुकुलो के निकले हुए स्नातक महापडित होते हुए भी व्यवहार-ज्ञान से शून्य होते हैं।

इस वात के मान लेने में किसीको सदेह नही करना चाहिए कि चटशाला यानी छोटी-से-छोटी शाला से लेकर गुरुकुल और यूनिवर्सिटी और विद्यापीठ अपने विद्यार्थियों मे जानकारी ठूसने का ही काम करते हैं, जानकारी कराने का नही। सूत्र-ग्रथ चिल्ला-चिल्लाकर यह कह रहे हैं कि वे जानकारी रटा सकते है, जानकारी करा नही सकते।

व्याकरण भापा-ज्ञान का भडार होते हुए भी भापा-ज्ञान नही करा सकता। यह सम्भव है कि व्याकरणशास्त्र मे पारंगत भापण देने मे मूर्ख सिद्ध हो, या चारों वेद का पाठी यह भी न जानता हो कि वेदों मे क्या लिखा है। मेरे आश्रम मैं एक पडित जमनादत्त मस्कृत के अध्यापक थे। उनका छ: वरस का लडका पाणिनि की लघु कौमुदी सारी-की-सारी कण्ठस्थ किये हुए था। पर सस्कृत छोड वह हिन्दी भी पढना-लिखना नही जानता था। क्या उस लडके की व्याकरण की जानकारी को जानकारी नाम दिया जा सकता है ?

हम इस तरह के उदाहरण देकर अपनी वात को ज्यादा बढ़ाकर असली वात से दूर नही होना चाहते। हमें यहां तो इसी वात पर जोर देना है कि हमारे पाठक अपनी-अपनी
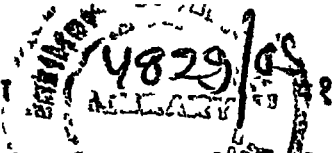
जानकारी को परखे और जितनी जानी हुई जानकारी उसके पास है उसीको आधार बनाकर शेष जानकारी को जानी हुई जानकारी बना ले। तब और तभी, वे दासता की बेड़िया काट सकेंगे और आजादी का सुख भोग सकेंगे। आजादी की अवस्था मे भी निकम्मी जानकारी हमारे साथ रहती है। पर वह ऊपर नही रहती, नीचे दबी रहती हैं। और जब वह जानी हुई बन जाती है, तब मूल जानकारी मे घुल-मिल जाती है।

आज भी हमारे देश भारतवर्ष मे विज्ञान के ऐसे जानकार हैं, जो छोटा-मोटा ऐटम बम बना सकते है, क्योकि ये अप्सरा नाम की एक आणविक (एटोमिक) भट्‌टी तैयार कर चुके है। पर ऐसे वैज्ञानिक तो गिनती मे इतने भी नही है कि कनिष्ठा से लेकर अनामिका तक भी गिने जा सके। इनके विज्ञान-पर्वत की 'गौरीशकर' और 'कचनजंगा' नाम देकर भारत का नाम रोशन किया जा सकता है, पर और देशो जैसा काम नही किया जा सकता। कारण यही है कि विज्ञान की जानकारी से ठसाठस भरे हुए पंडितो की गिनती तो दसियों, बीसियो, से लेकर सैकडो-हजारो तक पहुच गई है, पर विज्ञान की जानी हुई जानकारी तो एक-दो ही के पास है।

जानी हुई जानकारी कितनी ही थोडी क्यो न हो, अगर वह देश के सब जवान लडके-लडकियो को प्राप्त है तो वह उससे कही ज्यादा समझी जानी चाहिए, जो कितनी ही बडी क्यो न हो, पर प्राप्त हो केवल एक-दो को। एक इच व्यास वाली एक मील ऊ ची लम्बी पानी की धार मे पानी तो इतना भी नही रह सकता, जितना एक मामूली तालाब मे, पर हां, इससे वह प्रान्त या देश सारे जगत मे प्रसिद्ध जरूर हो सकता

है, कामवाला नहीं समझा जा सकता। वह ऊंची-लम्बी धार काम की सिद्ध होने के स्थान में उल्टी भयानक सिद्ध हो सकती है। आज की दुनिया कुछ ऐसी ही भूल कर बैठी है।

हमने कपास से सूत निकालने की जानकारी जानकर प्राप्त की है, यानी काम करके प्राप्त की। जिन दिनों प्राप्त की थी, उन दिनों यह ऐसी ही अचरज की चीज थी, जिस तरह आज का ऐटमबम और हाइड्रोजन बम। पर हमने किया यह कि इस जानकारी को गांव-गाव और घर-घर फैला दिया और बच्चे-बच्चे को इस जानकारी का जाना हुआ जानकार बना दिया। यह जानकारी इतनी विस्तृत थी कि बर्तानिया की कपडे की मिलें इससे होड़ न कर सकी। रो दी, चीख पड़ी और अन्याय पर उतारू हो गई, तब कहीं जीवित रह सकी। अगर हमने आगे के सब तरह के विज्ञान को इसी ढग से फैलाया होता, तो आज शायद हमारे पास रेडियो या टेलिविजन न होता। हो सकता है कि बिजली के कुमकुमे भी न होते। पर हम बहुत सुखी होते। और अगर यूरोप-अमरीका ने हमारा अनुकरण किया होता तो वे दो महायुद्धो में होकर न निकले होते। और फिर तीसरे महायुद्ध के डर से तो कभी न डर रहे होते। जितने हम सुखी होते उतने वे भी सुखी होते।

जानी हुई जानकारी जितनी देश में कम मात्रा में होती है उतनी भयानक और विनाशकारी होती है और जितनी ज्यादा होती है उतनी ही प्यारी और पालक बनती चली जाती है। पहाड़ों की चोटियां बर्फ से लदी रहती हैं। न वहां कोई रह सकता है और न वे किसी और काम आ सकती हैं। पहाड़ों को आबादी के योग्य बनाने के लिए उन चोटियों

को काटकर घाटियो मे डालना होता है । तब रहने के लिए पठार तैयार होते हैं । इसी तरह विज्ञान-पर्वत की चोटियो को काटकर नीचे गिराना होगा, विज्ञान के पठार तैयार करने होगे । तब और तब ही यह ससार सुखी हो सकेगा । जानी हुई जानकारी का क्षेत्र जितना विस्तीर्ण होगा, उतना ही जगत का भला होगा ।

हमने एटमबम बनाकर नागासाकी और हीरोशीमा को नष्ट ही तो किया है । अगर हम गहराई से सोचे तो हमारा सारा विज्ञान हमे बेहद हानि पहुचा रहा है । इसलिए नही कि विज्ञान खराब चीज है, बल्कि इसलिए कि वह ज्ञान की और शाखाओ की अपेक्षा कुछ इतना जरूरत से ज्यादा लम्बा हो गया है, जैसे किसी बीमार बालक का पेट लम्बा हो जाता है । जिस प्रकार इसका इलाज कराते हैं, उसी प्रकार इसकी प्रगति का भी इलाज कराना पडेगा । यह भी जानी हुई जानकारी का कहना है कि अगर चाद पर थूकोगे तो वह थूक तुम्हारे मुह पर ही गिरेगा । इसीके आधार पर यह बात भी कही जा सकती है कि अगर तुम चन्द्रमा को एटमबम की गोला-बारी से तग करोगे तो वह टूटकर तुम्हीको नुकसान पहुचायेगा । यह भी तो विज्ञान का ही कहना है कि हमारे सागर की लहरे चन्द्रमा से शासित होती हैं । तब क्या उसका विघ्न हमारे तारो मे विघ्न नही डालेगा ? रेडियो-ऐक्टिव कण और उनके नुकसान से आज हर देश के कालिज का विद्यार्थी जानकार है ।

हमारे पाठको ने अब समझ लिया होगा कि आजाद बनने के लिए जानी हुई जानकारी कितनी जरूरी चीज है और

उसे कायम रखने के लिए कितने प्रसार की आवश्यकता है, प्रचार की नही । यह भी जान लिया होगा कि उसकी एकागी उन्नति देश और सारे जगत के लिए कितनी भयानक बन बैठ सकती है । अगर आप आजाद और आत्म-प्रेमी हैं तो आप जानी हुई जानकारी पर ही भरोसा करते होंगे, शास्त्रों मे पढी और कल्पित जानकारी पर नही ।

: १५ :

भ्रम-जाल काटना

सबके मन मे यह बात समाई हुई है कि देह ही सबकुछ है । यही आत्मा की रक्षा करती है । मकान ही सबकुछ है । यही आदमी को आधी-पानी से बचाता है, अर्थात् जो देखा, सुना, सूघा, चखा और छुआ जाता है, वही सबकुछ है । इसी सिलसिले मे धन को भी महत्व दिया गया है, फिर चाहे वह गौ-धन हो, अन्न-धन हो, धरती-धन हो, नारी-धन हो, पुत्र-पौत्र-धन हो या स्वर्ण-धन हो । विद्या-धन भी धन माना गया है, पर उसको ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता, क्योंकि वह निराकार है । इसी तरह के और भी धन हैं । जैसे—पूजा-धन, अधिकार-धन, तपोधन इत्यादि ।

इस ओर किसीका ध्यान नही गया कि ऐसी मान्यता भारी भ्रम है । जो निराकार और अमूर्त है, वही सबकुछ है । जिसे सब कुछ समझा जा रहा है वह छूछा, बेकार और कुछ नही है । चौकिये नही । यह सत्य से भी बढकर तथ्य है ।

आइये, आपकी सबकुछ समझी जानेवाली देह को लेते हैं। कानो मे सुराख है, वह तो देह नही है। यह तो खाली जगह है। अर्थात् शून्य है। मुह मे जो पोल है और गले मे जो नली है और जो नली फेफड़ो तक गई है, सभी पोली हैं, अर्थात् सब अन्दर से न-कुछ हैं। यही हाल मूत्र और मल-द्वार का है। कबीरसाहब को अचरज तो हुआ और एक दोहा भी लिख गये—"नव द्वारे का पीजरा तामे पछी पौन, रहने को अचरज हुवै, गये अचम्भा कौन।" वास्तव मे देखा जाय तो न-कुछ नामधारी ये नौ द्वार ही सबकुछ हैं। कौन नही जानता कि नाक के दो द्वार और मुह का एक द्वार बद कर देने से ये सबकुछ कहलानेवाली देह न-कुछ मे बदल जाती है। देखिये, कितना बड़ा भ्रम है। न-कुछ सबकुछ हो गया या नही ?

अब अपने घर को लीजिये। उसमे भी सबकुछ है। छत सबकुछ है, खिडकी और द्वार न-कुछ, और बीच की जगह न-कुछ। अब अगर न-कुछ कहलाने वाले खिडकी और द्वार सबकुछ कहलानेवाली भीत मे बदल दिये जाय तो आप उसके अदर कुछ मिनटो मे ही जान गवा बैठेगे और अगर भीतर की जगह भी जो न-कुछ नाम से पुकारी जाती है, सबकुछ मे बदल दी जाय तो आपका मकान रहने की जगह भी न रह जायेगा, चबूतरा या चौकोर स्तूप बन जायगा।

भ्रम कुछ भी नही, पर भ्रम ही तो है, जो हम सब पर छाया हुआ है, जो हमे यह जानने ही नही देता कि हम हैं क्या और हममे कितनी शक्ति है ?

सन् १९२० के अन्त तक दो हजार अग्रेज हम चालीस

करोड पर शासन कर रहे थे, अर्थात् एक अंग्रेज दो लाख हिन्दुस्तानियों को सम्भाले हुए था। दो लाख भेड़ों को भी एक गडरिया न सम्भाल सकता था। जब भी कोई विदेशी यह सुनता था तो उसे विश्वास नही होता था। जब एक हिन्दुस्तानी अमरीका पहुचा तो अमरीका के एक निवासी के लिए वह तमाशे की चीज बन गया। वह उसे देखने घर से निकला और उसके पीछे-पीछे हो लिया। पीछे-पीछे चलता जाता था और कहता जाता था कि इसके हाथ, पाव, सिर सभी तो आदमी के से हैं। यह चलता है, देखता है, सुनता भी जरूर होगा। इसलिए उसने आवाज दी—"ओ हिन्दुस्तानी!" आवाज सुनते ही उसने मुडकर देखा और उसे विश्वास हो गया कि यह सुनता भी है। फिर उसने उसे नोचा और उसने तनक कर और पीछे मुडकर कुछ कहा भी। इससे उसे विश्वास हो गया कि यह तो मुझ ही जैसा आदमी है। फिर इसमें क्या कमी है, जो ऐसे दो लाख को एक अंग्रेज सम्भाले हुए है! बस यही कि हिन्दुस्तानी उन दिनो बडे मजबूत भ्रमजाल में फंसा हुआ था। भेडो के साथ पले शेर के बच्चे की कथा सबने सुन रखी है। उसने जब अपना मुह पानी मे देखा और वह शेर से मिलता हुआ मालूम हुआ तो उसका भ्रम दूर हो गया और उसी क्षण वह भेड़ न रहकर शेर बन गया। दासत्व भी इसी तरह एक भ्रम है। वह हमपर ऐसा छाया हुआ है कि हम यह सोच ही नहीं पाते कि इससे हमारा छुटकारा हो सकता है। सन् १६२० मे हम हिन्दुस्तानी अंग्रेजों के दास थे। नये-नये हथियारों से लैस 'न-कुछ' टौमी हमपर राज्य कर रहे थे, विदेशो ने हमारी रक्षा कर रहे थे। हम यह समझे हुए

थे कि अगर यह टौमी चल दिया तो कल रूस हमारे देश को हडप लेगा। इतना ही क्यो, काबली पठान हमारे देश के मालिक बन जायगे। हम अपनेको अगुली पकडकर चलनेवाले बालक समझे हुए थे और अग्रेजो को माई-बाप। हमारे पढे-लिखे विद्वान्, धार्मिक गुरु, सेठ-साहूकार, यहातक कि फौजी जवान सबका यह विश्वास था कि अग्रेजो के हटते ही हम सब लड मरेगे, बरबाद हो जायेगे, किसीके भी गुलाम बन बैठेगे। इस भ्रम ने हमे इतना निर्बल बना रखा था कि हम चालीस करोड, दो हजार अग्रेजो को निकाल बाहर करने की बात मन मे भी नही ला सकते थे। सन् २० मे अचानक इक्यावन बरस का एक बूढा, मुठ्ठीभर हड्डियो के ढाचेवाला, हमारे इस भ्रमजाल को काट फेकता है और हम तोप-बन्दूको की परवा किये बिना अग्रेजो के खिलाफ उठ खडे होते हैं और सिर्फ इने-गिने नारो से ही अग्रेजी राज्य की जडो को हिला देते है। उस समय के रीडिग नामक वाइसराय को विलायत जाकर यह सबको बताना पडता है कि अग्रेजी राज्य हिन्दुस्तान से जाते-जाते बाल-बाल बच गया। सत्ताईस बरस के बाद हम निहत्थे केवल भ्रम से दूर होकर अग्रेजो को निकाल बाहर करते हैं, और अपने देश के मालिक बन बैठते हैं। ऐसा करके हम ससार के सामने एक अनोखा उदाहरण भी पेश कर देते हैं, वह यह कि आजादी की लगन, आत्म-प्रेम, के द्वारा भ्रमजाल काटा जा सकता है और आत्मा की अपार शक्ति जगाई जा सकती है।

एका बडी चीज है। इसका महत्व बच्चे-बच्चे के हृदय मे

बिठाने के लिए ताश के खेल में इक्के को सबसे बड़ा मान लिया गया है। पर भ्रमजाल में फसे हम इस महान सत्य और तथ्य को हृदयस्थ ही नही कर पाते। हम हिन्दुस्तानी हर तरह एक है। एक ही मानव-वृक्ष की शाखा हैं, पत्ते और फल-फूल हैं, यह समझ ही नही पाते। पेड़ का तना कड़ा और भोड़ा होता है। पत्ते हरे और चमकीले होते हैं। फूल सुन्दर और खुशबूदार होते हैं। फल मीठे और रसदार होते हैं, पर सब हैं इसी पेड़ के अग। एक के बल दूसरा जीवित है। पत्ते जड जितना ही महत्व रखते हैं। पत्तो के टूटने पर भी मजबूत पीड़ सूख जायगी। खजूर के सबसे ऊपर के कुछ पत्ते काटकर फेंक देना खजूर के पेड़ का सिर काट डालना है। वह कुछ ही दिनों मे सूखकर गिर जायगा। इसी तरह हम हिन्दुस्तानी चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान, ईसाई हों या कोई भी और हो, हर तरह भाई-भाई हैं। मुसलमान और ईसाई के कुछ ही पीढियो पहले के पुरखा हिन्दू मिलेगे। इसलिए हम सब एक ही हैं। अनेकता कोरा भ्रम है। चीन के मुसलमान तो अपनेको बौद्ध मानते हुए मुसलमान कहते हैं। वे इस विचार को किस सुन्दरता से पेश करते हैं। उनका कहना है कि हम हैं तो बौद्ध, क्योंकि हम बुद्ध के अष्टांग धर्म मे विश्वास करते हैं, पर कर्म-काड मे हम मुसलमान हैं, क्योंकि हम मस्जिद में नमाज पढते हैं, कलमा जानते हैं, रसूल को मानते हैं। यह है उनका भ्रम-जाल-रहित विश्वास। हम हिन्दुस्तानी भी अगर इसी तरह अपना भ्रम-जाल काटकर फेंक दे तो दुनिया में एक महान शक्ति सिद्ध हो सकते हैं— ऐसी महान शक्ति जो सिकन्दर और चगेजखा की तरह

दुनिया को नेस्तनाबूद करने पर ऊतारू न होकर प्रेम से सारी दुनिया को एकसूत्र मे पिरो सकेगी, एक मानव-धर्म की स्थापना कर सकेगी, एक मानव-जाति का निर्माण कर सकेगी। हम फिर न किसी एक नगर के नागरिक रह जायगे, न एक देश के, न एक भू-खड के। हम हो जायगे जागतिक यानी सारे जगत के। आप चाहे तो जागृत भी कह सकते हैं। हम सब सचमुच सोये हुए हैं। जो अनेकता, जो नाश-विनाश, जो एटम बम, हाईड्रोजन बम के तमाशे हम देख रहे हैं, वे एक तरह के स्वप्न ही हैं। जागतिक होकर जब हम जागृत होंगे तो यह सबकुछ न रह जायगा। हम सब भाई-भाई दिखाई देने लगेंगे। एक-दूसरे से गले मिल रहे होंगे और अन्यायपूर्ण दुःस्वप्न की चर्चा हँस-हँसकर कर रहे होंगे। पास-पोर्ट और पर-मिट स्वप्न की चीज बन गये होंगे। हिन्दू और मुसलमान, बगाली, पजाबी, राजा-रक, ब्राह्मण-बनिया, चीनी-जापानी, अमरीकी-जर्मनी सब भेद्भ-भाव मिट गये होंगे। इनकी याद कर-करके हम लोग हँस रहे होंगे और यह कह रहे होंगे कि हम कितने मूर्ख थे कि एक मानव-वृक्ष के अग होते हुए भी अपने अलग-अलग अस्तित्व का अभिमान करते थे। एक-दूसरे के नाश पर उतारू होकर उस मूर्ख का अनुकरण कर रहे थे, जो जिस शाखा पर बैठा था उसीको काट रहा था। जबतक हम अपनेको अलग-अलग माने हुए हैं, हम भ्रमजाल मे फसे हुए है।

हम हिन्दुस्तानी उस समय तक आजाद समझने के अधि-कारी, नही जबतक हम वर्ण-भेद, प्रान्त-भेद, धर्म-भेद, धन्धा-भेद, अवस्था-भेद, अधिकार-भेद इत्यादि भेदो को जड़-मूल से नष्ट न कर दे। ये भेद-प्रभेद बहुत बड़ी

दासतायें हैं, क्योंकि ये अनैक्य का कारण हैं और अनैक्य तो दासता से भी बुरी बला है। याद रहे, ये भेद-प्रभेद देखने मे ही कड़े और न टूटने योग्य हैं। वास्तव मे न इनमें कोई बल है, न इनका ऐसे ही कोई अस्तित्व है, जैसे स्वप्न के दृश्यो का। जागने यानी भ्रम दूर करने की देर है कि ये सब ऐसे विला जायगे, जैसे हवा चलने पर वादल विला जाता है।

भ्रम कुछ नही, पर सबकुछ बना बैठा है। इस कुछ नही की तरफ से बेपरवा होना न आजाद का काम है, न आत्म-प्रेमी का।

: १६ :

गिरते को सम्भालो

आप आजाद हैं। बड़ी खुशी की बात है। पर यह तो कहिये, कितने धोखे खाये हैं ? कितनी बार आप ठगे गये हैं ? कितनी ठोकरे खाई हैं ? कितनो पर से विश्वास खोया है ? सवाल तो आपका ठीक है, पर इसका तो मैंने हिसाब नही रखा। जैसे बच्चा यह नही बता सकता कि वह कितनी बार गिरकर चलना सीखा है, वैसे ही मैं यह नही बता सकता कि मैंने कितने धोखे खाये है, कितनी बार ठगा गया हूं ? पर हां, इतना हिम्मत के साथ कह सकता हूं कि कभी अपने किसी साथी पर से मैने विश्वास नही खोया।

तब आप बेशक आजाद हैं। यह सुनकर कि आपने अपने विश्वास को कभी डिगने नहीं दिया, मेरा जी उमड़ा चला आ रहा है। आपको छाती से लगा लेने को जी हो रहा है।

आपने ही आजादी को माना है, जाना-पहचाना है। उसकी तरगो पर झूला झूला है।

इसे सच समझिये, कभी कोई अपने मित्र को धोखा नही देता। ये परिस्थितिया हैं, जो उससे ऐसा दुष्कृत्य करा लेती हैं। क्या कोई बालक गिरने के लिए गिरता है ? वह न गिरना चाहता है, न गिरता है। परिस्थितिया उसे गिराती है और वही उसे उठाती है। अगर गिरने के वक्त बच्चा गिरे नही तो कमर मे वह ऐसा झटका खायगा कि उसकी कमर सदा के लिए टेढी हो जायगी। इस तथ्य को लोगो ने अक्सर सुना है और कुछ ने आखो से देखा भी है कि बहुत ऊंचे से गिर-कर भी कभी-कभी बच्चे ही नही, जवान और बडे भी बच जाते हैं। भूकम्प से गिरे हुए मकानों के मलवे मे हर उम्र के जीवित आदमी, जीवित पशु और जीवित पक्षी मिले है। इसे ईश्वर का चमत्कार कह बैठने से किसी आजाद व्यक्ति की तसल्ली नही हो सकती। यह कहना सचाई की खोज से भागना है। बचते वे ही हैं, जो बचने की कोशिश नही करते। मै यह नही कह रहा हू कि जो गिरे, वह उठने की कोशिश न करे। मै कहना यह चाहता हू कि जिस वक्त वह गिरा, वह इतना अचानक गिरा कि संम्भलने की सोच ही न सका। वह चोट कम खाता है। और जो गिरते-गिरते सम्भलने की कोशिश करने लगता है, वह प्रकृति का सन्तुलन बिगाड लेता है। यों ज्यादा चोट खा जाता है। बहुत बेढगा गिरे तो मर भी जाता है। ऐसी हालत बहुत कम लोगो के साथ होती है। इसलिए भूकम्प मे बहुत कम ही बच पाते हैं। भूकम्प आते तो अचानक है, पर सैकिण्डो पहले अपने आने की सूचना दे

देते हैं। उनकी अवाई की खबर पाकर आदमी सचेत हो जाते हैं। यह चेतना प्रकृति का सतुलन खोने मे सहायक बन जाती है और यो हजारो-लाखो को जान से हाथ धोने पडते हैं। मुर्गी के ताजा अण्डे को आप घास के मैदान पर कितना ही ऊंचा फेककर घास पर गिरने दीजिये। वह कभी नही टूटेगा। वह हमेशा अपने छोटे भाग के बल आयगा। उसकी छोटी मेहराब हमेशा बहुत मजबूत होती है। यह एक वैज्ञानिक सचाई है। बोतल को ले लीजिये। वह अगर बेपरवाही से गिराई जाय तो पेदो के बल गिरेगी और टूटने से बच जायगी। छोटा बच्चा गजभर ऊंचे पालने से अगर सिर के बल गिरे तो चूतड के बल आयगा, उसका सिर फटने से बच जायगा। अगर कही मां संभालने लगे तो उसका संतुलन बिगड़ सकता है और वह मौत का शिकार हो सकता है। यह सब मैं इसलिए कह रहा हू कि जब भी अपने किसी साथी का पतन होता है तो हमारे प्रति उसकी नीयत सर्वथा खराब नही होती। इसलिए अगर हम अपना विश्वास उसपर से हटा लें तो हम सच्चे अर्थों मे आजाद व्यक्ति नही समझे जा सकते।

आजाद की यह एक खास पहचान है कि वह गिरे हुओं को उठाने मे बहुत आनन्द मानता है। ऐसे काम में लगकर उसकी चाल कितनी धीमी पड़ जायगी, उसकी वह रत्तीभर भी परवा नही करता। वह अपनी उन्नति की बात सोचता ही नहीं। अपने साथियों की उन्नति को ही अपनी उन्नति मानता है। जैसे अपने हाथ-पांव, छाती या सिर या छोटे-से-छोटे उपाग अंगुली को भी लेकर साथ आगे बढ़ना प्रगति कहलाता है, वैसे ही अपने कमजोर-से-कमजोर साथी को भी साथ

लेकर आगे बढना आजादी की राह मे बढना समझा जाता है। इसलिए आजादी के पथिक को पग-पग पर रुकना पड़ता है। जो घबरा जाते है, उनको सम्भालना पडता है, जो भटक गये होते हैं, उन्हे राह पर लाना पडता है, जो हिम्मत हार गये होते हैं। उनकी हिम्मत बधानी पडती है। जो निराश हो गये होते हैं, उनमे आशा जगानी पडती है। थोड़े मे यह कि जिसमे भी जो भी कमजोरी आ गई होती है, उसकी वह कमजोरी दूर करनी होती है।

आजाद स्वार्थी और मतलबी नही होता। स्वार्थी और मतलबी आजाद हो नही सकता। स्वार्थी, मतलबी यानी दास। फिर आजाद कैसा ? निस्वार्थी ही आजाद होता है। स्वार्थ तो बन्धन है। उसे तो तोडना ही पडता है।

यह भी याद रहे कि स्वार्थहीन दुनिया मे कोई नही होता। स्वार्थहीन होना उतना ही असम्भव है, जितना देहहीन होना। पर सदेह व्यक्ति तो आजाद होते है। इसलिए स्वार्थ-सहित भी आजाद होने चाहिए। पर सदेह तो दास भी होते हैं। इसलिए स्वार्थ-सहित भी दास होने चाहिए। दोनो का अन्तर पाठको की समझ मे आ गया होगा। पर हम और साफ किये देते हैं। आजाद की देह अपनी होते हुए भी समाज की देह है। यही हाल उसके स्वार्थों का है। इसलिए उसका स्वार्थ कोई उसका स्वार्थ नही है। वह सब समाज का स्वार्थ है।

यह बात न उलटबासी है, न गूढ। दास की समझ मे भले ही न आये, आजाद की समझ मे आ सकती है। उस आजाद की समझ मे भी आ सकती है, जिसने आजादी के पथ

पर नया-नया पग रखा है और दस-पाच ही डग चल पाया है।

आजाद का निस्स्वार्थ गुण उस समय उसके बडे काम आता है जब वह आगे अपनी विजय देखता है और पीछे किसीको गिरते देखता है। उस समय यही गुण विजय का मोह छुड़ाता है, गिरे हुए व्यक्ति को उठाता है।

मैं सैकड़ों कमाता हूं। खुद तो खा नही सकता। बच्चों के लिए कमाता हूं। मैं हजारों कमाता हूं, रिश्तेदारों के लिए कमाता हूं। मैं लाखों कमाता हूं, अपनी जातिवालो के लिए कमाता हूं। मैं करोड़ो कमाता हूं, अपने देशवासियों के लिए कमाता हूं। इसलिए मुझे जितनी आजादी चाहिए, वह तो मुझे प्रकृति की ओर से मिली हुई है। उसकी कमाई की जरूरत नही। वह है मेरे मन की आज़ादी और मेरे मस्तिष्क की आजादी। शेष और आज़ादी तो मैं अपने बालकों के लिए चाहता हू, अपने रिश्तेदारों के लिए चाहता हूं, अपने देशवासियों के लिए चाहता हू। और ज्यादा मिल जाय तो सारी दुनिया के काम आयगी। जिस तरह कुछ गज कपडा और कुछ हाथ धरती, कुछ सेर अनाज मेरे पल्ले पडता है, उसी तरह हजारों की आजादी मे एक बटा हजार मेरा है। उस एक बटे हजार में मैं अगर तसल्ली कर बैठू तो मैं स्वार्थी हूं, मैं दास हूं। अपनी वासनाओं का दास हूं। मेरी मुक्ति नही हो सकती। मैं आजाद रहते हुए भी दास रहू गा। अंग्रेजों के राज्य में गांधी आज़ाद था, पर उसके देशवासी पराधीन थे। इसलिए वह भी पराधीन था। एक की स्वाधीनता, एक की स्वतन्त्रता, एक की आजादी है तो, पर कुछ भी नहीं। गधे के सीग और गूलर

के फूल वाक्य मे मौजूद मिलेगे, गधे के सिर और गूलर के पेड पर नही मिलेगे। यही हाल है किसीकी आजादी का। आजाद व्यक्ति इस तत्व को खूब समझता है, तभी तो उसको पतितो से घृणा नही होती। अजी, घृणा कैसी ? उनसे उसे प्यार होता है। उनकी खातिर वह बडी-से-बडी जीत को छोड देगा, क्योकि वह उनके उठाने को सबसे बडी जीत समझता है। यही कारण है कि आजाद को अपने काम मे थकान महसूस नही होती। किसने मा को नही देखा ? जो बीमारी के कारण आधा सेर बोझा नही उठा सकती, वह अपने पाच-सात सेर के बच्चे को गोदी मे उठा लेती है, खडी हो जाती है। आजाद भी कुछ ऐसी ही मिट्टी के बने होते है। वे जो भी आजादी कमाते हैं, वह सब दूसरो के लिए होती है। इसी कारण वे गिरे हुओ को उठाने में वही आनन्द अनुभव करते है, जो आजादी कमाने मे।

: १७ :

प्रेम में डूबे रहो

आजादी की आखिरी मजिल है प्रेम। जो आजाद है और प्रेमी नही है, वह अभी बालक है। यह भी कहा जा सकता है कि जो प्रेमी नही है, वह आजाद नही है। पर इस वाक्य से हमारे पाठक धोखे में पड़ सकते हैं। कुछ भड़क भी सकते हैं। कुछ बिगड सकते हैं। इसमे हमारा दोष नही। प्रेम शब्द का दोष है।

प्रेम का इतने अर्थों मे प्रयोग होता है कि उसकी गिनती

नही गिनाई जा सकती । प्रेम मे पच्चीसों तरह के दोष आसानी से समा सकते हैं । प्रेम शब्द स्वय और प्रेम के सारे समानार्थी शब्द प्रेम के असली भाव को नही बताते । वे बताते हैं लगाव, जबकि प्रेम, जो हमे अभीष्ट है, जो आजादी का चिह्न है, कुछ अलग ही चीज है । यह लगाव से दूर, बिलगाव से दूर, यानी रागद्वेष से दूर, वीतरागता के निकट की चीज है, वीतरागता नही है । वीतरागता का अर्थ होता है दुनियादारी का अन्त । वीतरागी और अससारी एकार्थवाची शब्द हैं। प्रेमी ससारी होता है । ऐसा प्रेमी ही आजाद होता है ।

प्रेम के जितने पर्यायवाची शब्द हैं, वे सब 'पर' की अपेक्षा रखते हैं । लेकिन हमारा प्रेम, जो आजादी का प्रतीक है, निरपेक्ष होता है । सर्वथा निरपेक्ष कोई गुण नहीं होता, हम इस सिद्धान्त के कायल हैं । इसलिए इस सिद्धान्त को मानते हुए भी हम प्रेम की निरपेक्षता में विश्वास करते हैं । यह उलटबासी नही है । प्रेम आत्म-सापेक्ष होता है । इसलिए हम उसे निरपेक्ष कह रहे हैं ।

ऊपर जो कुछ हमने कहा, उसमे बहुतों के पल्ले कुछ नहीं पड़ा होगा । इसलिए उसको साफ कर देना जरूरी है । बात इतनी ही है कि प्रचलित अर्थ मे प्रेम किसी चीज से होता है । जानदार से हो या बेजान से हो, औरत से हो या मर्द से हो, पशु से हो या पक्षी से हो, देश में हो या जगत से हो, लोक से हो या परलोक से हो, देवता से हो या देवताओं के देवता परमेश्वर से हो यह सब पर प्रेम है । इसलिए सापेक्ष है । जो प्रेम आजादी की आखिरी मंजिल है, उसका इस तरह के प्रेम से कोई सरोकार नही । वह प्रेम प्रेम कम, ज्ञान ज्यादा होता है । ज्ञान का अन्त

है आत्म-शक्ति का ज्ञान, अपनी शक्ति का ज्ञान, अपना ज्ञान। यही ज्ञान प्रेम का रूप ले लेता है।

ऐसे ज्ञान मे प्रेम की क्या कोई पहचान है ? हा, है। यह दैहिक और मानसिक थकान को इतना कम कर देता है कि वह नाम के लिए रह जाती है। यह कहना अत्युक्ति नही होगा कि प्रेमी थकता ही नही। आजादी अगर थकान मानने लगे तो वह आजादी ही क्या !

आप कहेगे कि हमने तो कोई ऐसा आदमी देखा नही। आप ठीक कहते है। मैं भी आप ही मे से एक हू। पर मैं इतना जरूर मानता, जानता और देखता हू कि दुनिया का कोई भी आजाद देह-रहित नही होता। सब सदेह होते है, विदेह नही होते। देह आत्मा यानी शक्ति का घोडा है। देह थकान मानेगी ही। सिर से पैर तक पुद्गल यानी मैटर की बनी मशीन तक आराम चाहती है। आराम न मिले तो बेकाम हो जाती है। तो आदमी की देह क्यो नही आराम चाहेगी ! जब देह आत्मा का घोडा है तो उसे आराम दिया जाना चाहिए। देह को आत्मा का घोडा कहकर हम थोडी भूल कर गये। घोडा स्वय जानदार प्राणी है। उसको बहुत थकान होती है। इसलिए हम देह को आत्मा की साइकिल कहेगे। इस साइकिल को जिस तरह की थकान होती है और जितने कम आराम से यह फिर काम के लिए तैयार हो जाती है, आजाद आदमी की देह को भी उतनी ही कम थकान होती है और उतने ही कम आराम के बाद वह फिर काम के लिए तैयार हो जाती है। जिस तरह साइकिल चलती ही जायगी, इन्कार नही करेगी, गरम होकर फट जायगी, टूट जायगी, नष्ट हो जायगी,

पर उससे पहले रुकेगी नही, वैसे ही आज़ाद आदमी की देह भी काम से इकार नही करेगी, वह चाहे नष्ट क्यो न हो जाय । अव यह देही यानी देहधारी का काम है कि वह उसे आराम दे या न दे ।

जवतक देह दुख मानती रहे यानी आलस्य की शिकार होती रहे, तवतक यह समझते रहना चाहिए कि आपमे वह प्रेम नही जागा है, जिस शीर्षक के नीचे यह लेख लिखा जा रहा है । प्रेम का मतलव ही है अपनी शक्ति का ज्ञान ।

आदमी के अन्दर कितनी शक्ति है, इसका पता आदमी को नही होता । आजाद को भी अपनी शक्ति का पूरा-पूरा पता नही होता, पर दासो और गुलामों से हजारों गुना ज्यादा मालूम होता है । आइये, इस आत्म-शक्ति के खजाने की ओर चुपके से झांक ले ।

देखिये, चारपाई पर वह एक मा पडी हुई है, जिसे मोतियाझरा निकला हुआ है । तेरह रोज से एक खील उसके मुह मे नही गई है । उठकर पानी नहीं पी सकती । लेटे-लेटे उसके मुह मे पानी डालना पडता है । थोडे शब्दो मे कहना चाहिए कि वह एकदम निःसहाय और निशक्त है और अकेली है । उसका आठ-नौ महीने का वच्चा उसीके पास खटोले पर सोया हुआ है ।

वह देखिये, अचानक एक साप फन उठाये आता है । खटोले के पास पहुचा । उसने और उस बच्चे के ऊपर वार करना चाहा । और यह क्या ? उसकी निस्सहाय और निशक्त मां कमान से निकले तीर की तरह या वन्दूक से निकली गोली की तरह उठती है और इस जोर से अपना दाया हाथ उस

साप की गर्दन पर मारती है कि साप दो गज परे दरवाजे के बाहर जाकर गिरता है। इसके बाद वह चारपाई पर इस तरह गिरती है, जिस तरह कटा हुआ पेड़ गिरता है।

यह देह की शक्ति नही थी, आत्म-शक्ति का चमत्कार था। पर मा का आत्म-ज्ञान क्षणिक था। इसलिए शक्ति का चमत्कार भी क्षणिक था। आजाद का यही ज्ञान स्थायी होता है और यही ज्ञान प्रेम के रूप मे बिखरता रहता है।

इस तरह का अनुभव हरेक को होगा कि उसको चोट लगी है, पर उसे पता ही नही लगा कि उसके चोट लगी है। चोट भी मामूली नही, खासी गहरी और जोर की। एक घटना सुनिये !

मैं कोई बारह बरस का होऊ गा। रात के नौ बजे बच्चो के साथ आगन मे खेल रहा था। गर्मियो का महीना था। खेलते-खेलते ऐसा मालूम हुआ कि पीठ पर पसीना चू रहा है। पसीना बहने की सुरसुराहट मालूम हुई। झट बाये हाथ से पसीना पोंछ लिया। थोडी देर बाद यानी कुछ सेकिण्डों के बाद फिर सुरसुराहट मालूम हुई। फिर पसीना पोछ लिया। इसी तरह खेलते-खेलते दसियो बार पसीना पोछा। आध-पौन घटे खेलकर सो गया। खूब गहरी नीद आई। सुबह साढे पांच बजे आख खुली। शौच गया। मुह-हाथ धोया। मै अभी मुह-हाथ धोकर फारिग भी न हुआ था कि मेरी मा मेरी चारपाई के पास आई। बिस्तर पर नजर डालते ही उसने आवाज दी—"भगवानदीन, इधर तो आ !" मै दौडकर पहुंचा। बोली, "अपनी पीठ तो दिखा ?" मैंने पीठ दिखाई। वह एकदम बोली, "तेरी पीठ तो खून-खून हो रही है। देख, तेरा

सारा विस्तर लाल हो गया।" उनके ये शब्द सुनते ही जलन और घाव की तकलीफ शुरू हो गई। यह भी ज्ञान हो गया कि वह दीवार मे गढ़ी कील की नोक थी, जिससे नौ इंच लम्बा और सूत-सवासूत गहरा घाव हो गया था। पर मन तो उसे पसीना समझे हुए था।

यह घटना सुनाकर हम यह कहना चाहते हैं कि हमारा ध्यान अगर दूसरी ओर हो तो हमे चोट का पता नही चलता। पर यह ज्ञानोपयोग का उदाहरण है, प्रेम का उदाहरण नहीं। आत्म-प्रेम का तो बिलकुल नही। पर इस उदाहरण की सहायता से हम इस नतीजे पर पहुच सकते हैं कि आत्म-प्रेमी इसी तरह देह की ओर से चिन्ता हटा सकता है, हटा लिया करता है। जब चाहे हटा सकता है। इस योग्यता के कारण वह देह से काम लेता है और देह को थकान नही होती।

"देह को थकान नही होती" यह पद बनता ही नहीं। देह तो पुद्गल यानी मैटर है। उसे थकान से क्या सरोकार! थकान का अनुभव तो उस आत्मा को होता है, जो मोह के जरिये देह से रिश्ता स्थापित करती है। थकान के लिए संस्कृत शब्द वेदना बड़ा सुन्दर है। वेदना का अर्थ है जानना। जानना न सुख है, न दुख। इसलिए वेदना के दो रूप हो जाते हैं। एक अनुकूल वेदना, एक प्रतिकूल वेदना। अनुकूल वेदना का अर्थ है सुख और प्रतिकूल वेदना का अर्थ है दुख। अब पाठक भली-भांति समझ गये होंगे कि सुख-दुख, थकान-आराम इत्यादि देह से कोई सम्बन्ध नही रखते। आत्मा को ये होते ही नही। यह तो मोह से जुड़े आत्मा और देह के संपर्क

का परिणाम है । आजाद व्यक्ति को इस तरह का आत्म-ज्ञान अपने-आप हो जाता है।

प्रेम के विषय मे जितना गूढ विवेचन हम कर गये हैं, इसका सौवा अश भी सच्चा प्रेमी नही कर सकता । मगर सच्चा प्रेमी बिना थके हुए देह से काम ले सकता है, उसका सौवा अंश भी, हम देह को थकाये बिना, नही कर सकते । कहने का मतलब यह है कि आजादी की सच्ची लगन के साथ सच्चा ज्ञान अपने-आप हो जाता है और सच्ची क्रिया भी अपने-आप होने लगती हैं। आजादी की लगन के द्वारा उत्पन्न हुआ प्रेम किसी सीख या किसी ग्रन्थ-पाठ की अपेक्षा नही रखता ।

आजादी का रसास्वादन कीजिये । उसकी चाट पडी कि आत्म-प्रेम जागा । जिस तरह शेर जब लागू हो जाता है तो हर क्षण जान पर खेलने को तैयार रहता है, उसी तरह जब कोई आजाद आत्म-प्रेमी हो जाता है तब वह देह को अपनी आत्मा की साइकिल समझने लगता है, अपनी आत्मा की मोटर समझने लगता है। जब चाहे उसपर सवार होकर चल देता है और कही-का-कही पहुच जाता है ।

आजाद बनिये और आजादी का रसास्वादन कीजिये ।

: १८ :

आजादी के देवता

"मैं आजाद हू ।"

"अच्छा तब तो आपके देवता बदल गये होगे ।"

"क्या मतलव ? मै तो जिन देवताओ को मानता आया

हूं, उन्हींको अब भी मान रहा हूं ।"

"जी नहीं, आप ज़रा अन्दर नजर डालिये तो आपको पता चलेगा कि आपके देवताओं ने कुछ और ही रूप ले लिया है। यह आजाद आदमी ही की कहावत है—'सत्य ही ईश्वर होता है।'

"हां-हां, मैं समझा। मेरे देवता वही हैं, पर सचमुच उनके लक्षण बदल गये हैं। कभी हिंसा मेरी देवी थी, पर आज प्रेम मेरा देवता है, अहिंसा मेरी देवी है। कभी असयम मेरा इष्टदेव था, आज सयम इष्टदेव है। सचमुच ही मेरे देवता बदल गये हैं।"

"ठीक है, तो अब आप सचमुच आजाद हैं।"

दासता की देवी चुराई जा सकती है, लेकिन वही उसे सुख देती मालूम होती है। ऐसे व्यक्ति के लिए झूठ ईश्वर है। वहीं समय-समय पर उसकी रक्षा करता है। सचाई उसकी समझ में ही नही आती। चोरी और झूठ अगर बदनाम न होते और समाज मे नीची निगाह से न देखे जाते होते तो वे जरूर पहाड की चोटी पर चढकर यह कहता कि मैं चोर हूं, मैं झूठा हू। इसीमें अपनी शान समझता। गुलाम चोरी को चोरी नही मानता। झूठ को झूठ नही समझता। वह चोरी को साहूकारी और झूठ को सच समझता है। इन देवताओं की पूजा मे उसे ऐसा ही रस आता है, जैसा आज़ाद को अपने देवताओ मे।

एक ईसाई पादरी के घर में एक दासी थी। वह कभी-कभी पड़ोस से मुर्गी चुरा लाया करती थी। पादरी को जब पता लगा तो एक दिन वह उसे अपने पास बिठाकर उपदेश देने लगा:

पादरी—चोरी करना बहुत बुरा काम है। ईश्वर इससे

नाराज होता है ।

दासी—चोरी बेशक बुरी चीज है । मैं अपने बच्चो को यही उपदेश देती रहती हू ।

पादरी—तो तुम तो चोरी नही करती होगी ?

दासी—बिलकुल नही ।

पादरी—तुमने कभी पड़ोसी की मुर्गी तो नही चुराई ?

दासी—मुर्गी की भी क्या चोरी होती है ! मुर्गी कोई पड़ोसी पैदा करता है ! उसे तो खुदा हमारे खाने के लिए पैदा करता है । और खुदा इतना छोटा नही हो सकता, जो खाने-पीने की चीज के लिए मुझे चोर समझे ।

लीजिए, कर लीजिये दासता के दर्शन ? देखा आपने दासता का खुदा ? क्या कोई आजाद इस तरह सोच सकता है ?

दासी के दर्शन मे एक सत्य निहित है । पर उस सत्य को आजाद सत्याभास कहता है, यानी मत्य जैसा, सत्य-सा दिखाई देनेवाला । दासी तो अपढ थी । उसे क्षमा किया जा सकता है । पर यह जानकर आपको अचरज होगा कि दास्यावस्था मे बडे-बडे महापडित भी इसी दर्शन के विश्वासी होते हैं । उन्हें दास के सिवा और क्या कहा जा सकता है ? वे अपने प्रत्येक विचार के लिए किसी देवता या गुरु के वाक्य को प्रमाण मानते हैं । या उसको इसलिए ठीक समझते हैं कि उसे किसी किताब ने ठीक माना है । मतलब यह है कि वे स्वय सोचने का कष्ट ही नही करते । यही कारण है कि आज तरह-तरह के दर्शन खडे हो गये हैं ।

हमने अभी कहा कि दासी की बात मे कुछ सचाई भी

थी। उसको जरा साफ कर देना चाहते हैं। एक दिन हम भी अपने छुटपन में अपनी मा से पूछ बैठे थे कि मकड़ी मक्खी को पकड कर खा जाती है। क्या मकडी को पाप नही लगता ? अम्मा ने बताया, "नही, मकड़ी को पाप नही लगता।" हमारे गले यह बात नही उतरी। हम अम्मा से पूछ बैठे, "क्यों ?" अम्मा बडे प्यार से बोली, "बेटे, मकडी नही जानती कि मक्खी मे जान होती है। वह तो उसे अपनी खुराक समझती है और खा डालती है, उसे क्या पाप लगेगा ?"

देखा, आपने कितना तर्क-पूर्ण उत्तर है। दासता और इस तरह का खोटा ज्ञान दोनों साथ-साथ चलते हैं। जिसका आजाद होने पर यह वाक्य है कि 'सत्य ही ईश्वर होता है', वही आजाद होने से पहले सूरज को ईश्वर मानता था और मा के पेट से पैदा हुओ को भगवान और जगदोद्धारक समझता था।

अपना देश हिन्दुस्तान बरसों दास रह चुका है। उन दिनो इस देश के उद्धारको का दर्शन ही दूसरा था, देवता ही दूसरे थे। सचाई को समझने से जाति-पांति का भेद-भाव नष्ट हो जाता है। वैसे ही किसी बुराई पर उतारू हो जाने पर जाति-पाति का भेद-भाव नष्ट हो जाता है। अन्तर इतना ही होता है कि पहला स्थिर होता है, दूसरा अस्थिर।

दास का ज्ञान और आजादी का ज्ञान दो अलग-अलग ज्ञान नही हैं। चोरी का ज्ञान चोर को भी होता है, पुलिस को भी होता है, जज को भी होता है। हो सकता है, चोर को ज्यादा हो, क्योंकि उनका यह पेशा है। पुलिस को कम हो

क्योकि उसने इस ज्ञान को कानून और विधान से पाया है। जज को और भी कम हो, क्योकि उसने इस ज्ञान को किसी और ही दृष्टि से परखा है। इसलिए यही कहना पडेगा कि चोर को जो चोरी का ज्ञान है, वह खोटा ज्ञान है। पुलिस को जो चोरी का ज्ञान है, वह खोटा और खरा है। जज को जो चोरी का ज्ञान है, वह खरा और निर्मल ज्ञान है। इसी कारण तीनो के उपयोग मे भेद पड जाता है।

वास्तव मे देवता अपने-आपमे कुछ भी नही। गुण विशेष ही देवता मान लिये गए हैं और गुणों का समुदाय ही ईश्वर का नाम पा गया है। किसी-किसीने सारे गुण और-सारे अवगुण ईश्वर के सिर मढ़ दिये। ऐसा करने मे उसने कोई भूल नही की। अवगुण भी गुणी के पास और स्वयभू और स्वाधीन के पास शक्तिहीन हो जाते है। किसी-किसीको यह भला नही लगा। उसने शैतान तैयार कर लिया। मतलब यह कि न शैतान कोई अलग चीज और न ईश्वर कही अलग विराज-मान है। इनको अलग मान बैठना वहुत बडा भ्रम है, वहुत वडी दासता है। कुछ लोग हैं; जो देह को जेलखाना मानते हैं। पर उसे छोडने के लिए कभी तैयार नही होते। दासता भी कुछ ऐसी ही चीज है। उससे वडे-वडे महापुरुष भी पूरी तरह तैयार नही हुए। जिस तरह हर औरत को दासी कहने मे आनन्द आता है वैसे ही हर मर्द को दास कहने मे आनन्द आता है। अगर वह किसी तरह राजा या सरकार की दासता स्वीकार न भी करे तो ईश्वर का दास बने वगैर उसका काम नही चलता। जिस मनुष्य का यह हाल हो, वह मनुष्य आजादी की राह मे न जाने किस-किसको देवता मान सकता है।

आजादी की राह एकदम सीधी है, क्योंकि वह सच्चाई के कंकरो से कूटकर बनी है। भटक जाने के लिए कोई अवसर नही है। भटकना तो झूठे को भी नही चाहिए, पर वह भटकता तब है, जब झूठ को सच साबित करने की कोशिश करता है। सच्चाई मे ऐसा नही करना पडता।

: १६ :

आजादी के गुरु

"मै आजाद हू ।"

"आपके गुरु बदल गये होगे ?"

"नही, मैने तो कोई नया गुरु नही बनाया। जो पहले थे वे ही है।"

"तो क्या आप पिजड़े के तोते और आजाद तोते में अंतर नही करते ? क्या तांगे मे जुता घोड़ा और आजाद घोड़ा एक ही चीज है ? क्या मालिक की लात खानेवाला कुत्ता अब भी आपको वफ़ादारी का पाठ देता है ? क्या सरकस में आग के चक्कर मे होकर निकल जानेवाला शेर अब भी आपको बहादुरी सिखाता है ? यदि नही, तो किस तरह आप कह रहे है कि आपके गुरु नही बदले। आजादी तो वह चीज है, जो गुरु ही नही, गुरुजनो को भी बदल देती है। मां-बाप बदल जाते हैं। पति बदल जाता है।

इस सबसे हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि जब कोई किसी एक रंग मे गहरा रंग जाता है तो उसके गुरुओं को उसके अनुरूप होना पड़ता है, नही तो वे उसके गुरु नही रह

जाते। आजादी का भी रग जब किसी पर गहरा चढ जाता है तो उसके भी गुरु बदल जाते है।

देवताओ की तरह गुरु भी चरित्र का रूप है। गुणो के आधार पर जो क्रियाएँ हो रही होती है, सब हमे सीख देती हैं। इसलिए वे ही हमारी गुरु हैं। आजाद उन्हीको अपना गुरु मानता है।

जरा सोचिये, एक चीटे की आदमी के सामने क्या बिसात है! पर वह है कि आदमी से टक्कर ले बैठता है। एक थे हमारे मित्र। उनके घर मे चीटे बेहद निकलते थे। दिन मे भी निकलते थे। इतने निकलते थे कि सारे घर मे फैल जाते थे। उनसे वे ही तग नही थे, सारा घर तग था। चीटो को मारते हुए उन्हे दया आती हो, ऐसी बात नही थी। पर जिस तरह शेर चूहे को मारना अपनी शान के खिलाफ समझता है, वैसे ही वे चीटो को मारना शान के खिलाफ समझते थे। पर उनसे बचने का जो उपाय करते थे, वह शायद चीटो के मारने से कम न था। वह करते थे यह कि उन्होने तामचीनी की एक काफी बडी चिलमची खरीद ली थी। घर के किसी कोने मे एक रोटी रख देते थे। जल्दी ही उस पर सैकडो चीटे आ चिपकते थे। उस रोटी को वे धीरे-से उठाकर चिलमची मे रख देते थे। इस प्रकार चीटे चिलमची मे कैद हो जाते थे। रोटी फिर चीटो के बिल के पास रख देते थे। इस तरह जब चिलमची मे बेहद चीटे हो जाते थे तो नहर पार जाकर उन्हे छोड आते थे। यह क्रिया छ महीने चली। पर न चीटो ने हार मानी, न हमारे मित्र ने। हा, इतना हुआ कि चीटो ने आक्रमण का ढग बदल दिया। वे दिन की बजाय रात को

निकलने लगे। हमारे मित्र भी उनको रात के दो बजे उठकर पकड़ने लगे। उन्होंने अपनी कार्य-प्रणाली में कुछ तबदीली की। टीन के सूप में झाड़ू से चीटों को भर लेते और चिलमची में डाल देते। इसमें सम्भव था कि एक-दो चीटे आहत हो जाते हों, पर फूल की झाड़ू थी, इसलिए आहत होने की कम ही सम्भावना थी।

यह युद्ध कई बरस तक चला। अन्त में हार हमारे मित्र को ही माननी पड़ी। चीटों के सतत काम करते रहने का धर्म उनका गुरु बन बैठा और अब वह जिस काम में जुटते, जी-जान से जुटते। हमें तो याद नहीं पड़ता कि वह कभी किसी काम में असफल हुए हों। जिस काम में लगते, सफल होकर ही रहते। इस तरह चीटे उनके गुरु बन गये।

सचमुच आजादी की राह ही ऐसी है कि पग-पग पर गुरु मिलते रहते हैं। कहीं मकड़ी गुरु बन बैठती है तो कहीं ऊद-बिलाव। अश्वत्थामा का गुरु तो उल्लू ही बन बैठा। इतिहास ऐसे गुरुओं से भरा पड़ा है। इतिहास में लोग दासत्व की राह भी गये हैं और आजादी की राह भी गये हैं, और दोनों कहते यही रहे हैं कि वे आजादी की राह जा रहे हैं। वे कुछ भी कहें, पर जो सचाई की राह चलता है, वह पलक मारते ही परख सकता है कि इतिहास में कौन आजादी की राह गया है और कौन दासत्व की राह।

अब आप गुरुओं को पहचान गये होंगे। गुरुओं से हमारा मतलब उन गुरुओं से नहीं है, जो किसी खास वेश में रहते हैं, और जो अनगिनत पाये जाते हैं। हमारा मतलब उन सब शिक्षाओं से है, जिन्हें आजादी की राह पर चलनेवाले करते

है, या जो प्राकृतिक आजादी का उपभोग कर रहे हैं और निरन्तर इस क्रिया मे रत हैं ।

जो इस तरह के गुरु को नही खोज पाता, वह न आजादी की राह पर चल रहा है और न कभी आजाद हो सकेगा ।

: २० :

आज़ादी के ग्रन्थ

"मै आजाद हू ।"

"तब तो आपके सब ग्रथ ही बदल गये होगे ? आपका शास्त्र ही अलग हो गया होगा ? एक नया दर्शन खडा हो गया होगा ?"

"जी नही, ऐसी तो कोई बात नही है। मैं तो उन्ही किताबो को पढता हू , जिन्हे पहले पढा करता था ।"

"तो क्या कभी आप अपने दिल की किताब खोलकर नही देखते ?"

"ओहो ! आपका यह मतलब है ! उसे तो मैं हर वक्त पढता रहता हू ।"

"उसमे कुछ बदलाव हुआ ?"

"बेशक, वह तो एकदम बदल गई ।"

एक ही धरती से गन्ना मिठास खीच लेता है, नीबू खटास, नीम कडवाहट और हरड कसैलापन। यही हाल है ग्रन्थो का। उसमे से आजाद आजादी-वर्धक रस खीच लेगा और दास दासता बढानेवाली सामग्री । यह एक आजाद के मुह से निकले हुए शब्द हैं कि अगर छुआछूत का विधान वेद मे

मौजूद है तो मैं वेदो को वेद नही मानूंगा। वह ग्रन्थ, ग्रन्थ कहलाने के योग्य नही, जो उल्टे-सीधे किसी भी तरह से दासता का समर्थन करता हो।

बात यह है कि ग्रन्थों को आजाद व्यक्ति के अनुरूप बनना होता है, नही तो वे उससे आदर नही पा सकते। कौन नही जानता कि गाय के थनो को अगर जोंक लगा दी जाय तो वह खून ही को पियेगी, दूध को नही। उसके लिए गाय के थन कुछ और ही बन जाते हैं। उसी तरह एक ग्रन्थ जो दास को दासता का समर्थन करता दिखलाई देता है, वही आजाद को आजादी की सीख देता हुआ प्रतीत होता है। अगर सचमुच कोई ग्रन्थ ऐसा हठीला है कि वह अपनी दासता को ढीला नही कर सकता तो वहा दास उतना ही कड़ा बन जाता है और उस आदर को छीन लेता है, जो उस ग्रन्थ को पहले प्राप्त था।

आजाद की दुनिया ही बदल जाती है। फिर ग्रन्थ क्यों नहीं बदलेंगे? खोटे ग्रन्थ दुनिया से नष्ट नही हो सकते। काटे नष्ट नही होते, पर वे फूल की उन्नति मे बाधक नहीं होते। इसी तरह खोटे ग्रन्थ आजादी के फूलों को खिलने मे नही रोक सकते। ग्रन्थो की एक दासता है और वह ऐसी दासता है, जिसकी जजीरे तोड़ना अत्यन्त कठिन है। कभी-कभी उनका तोड़ना कष्टदायक बन बैठता है। आजाद दया के मोह मे फंस जाता है। ग्रन्थरूपी बेड़ियो को काटते-काटते रुक जाता है। ग्रन्थो के बन्धन से मुक्त होना आजादी की चरम सीमा है।

सारा विधि-विधान दासता का द्योतक है। वह दासो के लिए

निर्माण किया गया है। किसीके रसोई-घर मे अगर दीवार पर यह लिखा हो कि यहा थूको मत, तो क्या वह घर कहलाने के काविल है ? मन्दिरो और मस्जिदो मे भी अगर थूको मत की पट्टिया लगने लगे, या 'जूते उतारकर आइये' का वोर्ड लगने लगे तो यही समझना चाहिए कि समाज का घोर पतन हो गया है, समाज दासता के गढे मे जा गिरा है। इसी तरह वह आजाद व्यक्ति क्या, जो नैतिक नियमो के लिए किसी ग्रन्थ मे हवाला ढूढता फिरे। ग्रन्थ उसके सोचे हुए है। वे अपने मे सीमित हैं। आजाद व्यक्ति निस्सीम होता है। यदि नही है तो उसे होना चाहिए।

आगे हम एक वहुत वडी वात जो लिखने जा रहे हैं, उस-पर अमल करना कठिन है। हमारे रास्ते मे भी वड़ी-वडी कठिनाइया आई हैं। पर उन वातो पर अमल करनेवाला ही पूरा आजाद समझा जा सकता है। इस तरह का आजाद होना बेशक बहुत मुश्किल है, पर असम्भव नही है, अशक्य नही है। प्रयत्न से मन और मस्तिष्क को वैसा वनाया जा सकता है। हमने अपनी आखो एक मा और उसीकी जवान वेटी को ग्रन्थ की दासता से बरी होते देखा है। हमने उनकी नकल की। या यो कहिये, उनका अनुकरण किया। हमे किसी हद तक सफलता मिली, पर पूरी नही।

आप सव जानते हैं कि काव्य ग्रथो मे रसो का वर्णन रहता है। जो वात कही जाती है वह नौ रसो मे से किसी एक रस को लिये हुए होती है। ये रस मानव-हृदय पर अपना प्रभाव डालते हैं। उसमे तूफान उठा देते हैं। मनुष्य का हृदय तरंग-हीन तो नही हो सकता, पर तूफान-रहित होना सम्भव

है और आजाद व्यक्ति पूरी तरह से आजाद है, जब उसमे यह योग्यता आ जाती है कि वह अपने मन मे तूफान नही उठने देता, और यही है ग्रन्थ-बन्धन से मुक्ति।

इसीको हम यो साफ-साफ कहेगे कि रामायण के न राम से हमारा कोई रिश्ता है, न रावण से। पर इस काव्य ग्रन्थ की रचना कुछ इस ढग से की गई है कि राम हमारे बन जाते हैं और रावण पराया हो जाता है। राम के गुण हमारे लिए सूरज बन जाते हैं और अवगुण दिन के खद्योत रह जाते हैं, अर्थात अवगुण अवगुण ही नही रह जाते। परिणाम यह होता है कि उनके दु ख मे हम दु.खी हो उठते हैं।

आपने समझ लिया होगा कि ग्रन्थों से प्रभावित न होना कितना कठिन कार्य है। पर वे मा-बेटिया दोनो न ग्रन्थों मे प्रभावित होती थी, न सिनेमा की फिल्मो से। बेशक मां मामूली पढी-लिखी थी। पर विदुषियो की सोहबत में रही थी। हर विषय को समझती थी। दस सन्तानो की मां बन चुकी थी। नौ को बडी-बड़ी उम्र मे गवां चुकी थी, उनमें से किसी-की भी बात को अपने मुह पर नही लाती थी। सांसारिक सुख-दुख उसको बहुत ही कम विचलित करता था। खाली तो वह क्षण-भर भी नही बैठ सकती थी। जहां खाली हुई कि नीद आई। हा, बेटी स्कूल और कालिज मे पढ चुकी थी, ग्रेजुएट और बी टी थी।

जब ये दो आत्माए ग्रन्थो मे लिखी बातो से अप्रभावित रह सकती हैं तो फिर क्यो और दूसरे नही रह सकते ?

हमारा तो यह ख्याल है कि इस तरह के आजाद व्यक्ति ही देव-पुरुष कहलायेंगे। महामानव के नाम से पुकारे

जायगे । अंग्रेजी शब्द 'सुपरमैन' इन्हीको लेकर गढा गया है ।

ऐसे आदमियो का राष्ट्र या जगत वर्गहीन ही नही, विधान-हीन भी होगा और शासन-हीन तो होगा ही ।

यह कहकर हम पाठको की हिम्मत पस्त करना नही चाहते। सिर्फ एक आदर्श उनके सामने रखना चाहते हैं और वह भी कोई असम्भव आदर्श नही है । इस समय तो पाठको से सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि वे यथा-शक्ति, 'ग्रन्थ-मूढता' से बचें । 'लोक-मूढता' भी 'ग्रन्थ-मूढता' का अग है, क्योकि सारी रूढियां और रिवाज अपनी जड़ इन ग्रन्थो मे ही तो रखते हैं । इसलिए आजाद पथ पर चलनेवालो को इस कमजोरी से भी मुक्त देखना हमारा अभीष्ट है ।

: २१ :

आजाद करना

हम आजाद हैं, यह कहना आसान है । हम आज़ाद हो गये, यह कह बैठना जल्दबाजी है। आजाद होना ज़रा मुश्किल काम है । आजाद होने मे स्वावलम्बी होना पडता है । अपना काम होने से वह कुछ आसान काम है । पर किसी को आज़ाद करना-कराना आजाद हो जाने से कही ज्यादा कठिन है । यह तो याद ही रखना चाहिए कि आजादी पूरी आज़ादी नाम कभी नही पाती, जबतक आजादी आजाद करना और आज़ाद कराना न सीख ले । आजाद होना निकम्मा और अधूरा है, अगर हमारे आस-पास आजाद नही हैं। पड़ोसी की पराधीनता हमारी स्वाधीनता को घुन लगा देगी, खतरे मे डाल देगी ।

मेरा स्वाधीन होना निरर्थक है, अगर मेरे भाई-बहन पराधीन हैं या मेरे माता-पिता परावलम्बी है।

स्वाधीन होने से स्वाधीन करना या स्वाधीन कराना बहुत ऊंचे दर्जे का काम माना गया है। यह ठीक है कि स्वाधीन ही किसी दूसरे को स्वाधीन करा सकता है, या आजाद ही किसीकी पराधीनता का अन्त कर सकता है। पर छोटे पैमाने पर पराधीन होते हुए भी या पराधीन होकर भी दूसरे को आज़ाद कराया जा सकता है और कराया जाता रहा है। इसलिए स्वाधीन होने से स्वाधीन करने-कराने को बहुत महत्व दिया जाता रहा है। मान लीजिये, एक आदमी कर्जा चुकाने के बदले दास बनाया जा रहा है। एक दूसरा आदमी उसकी जगह दास बनकर उसको दासता से छुड़ा देता, है यह सचमुच बड़े मार्के का काम है। लोग उसकी जितनी तारीफ करें, कम है। पर ऐसा आदमी न तारीफ का भूखा होता है, न तारीफ की खातिर वह इस काम के लिए तैयार होता है। कथा-साहित्य ऐसे अनेक व्यक्ति पेश करता है, जो दूसरों की खातिर फांसी के तख्ते पर लटक गये। आदमी के अन्दर यह एक अनोखी भावना है, जो किसी समय किसीमें उबल पड़ती है। सचमुच यह प्रशंसनीय तो है ही, अनुकरणीय भी है।

विदेशी राज्य से एक आदमी भागकर बड़ी आसानी से आज़ाद हो सकता है, पर यह आजादी बढ़िया आजादी नहीं मानी जायगी और शायद उसमें भागनेवाले को अपनी तसल्ली भी नहीं होगी। वह आज़ादी तो दासता से भी ज्यादा चुभनेवाली सिद्ध हो सकती है।

भारत से इस तरह जितने आदमियों ने विदेश जाकर भी

विदेशी गुलामी की जजीरे तोड़ी, पर उन्हे चैन कहा था ? उनके भाई गुलामी के शिकजे मे दबे चीख रहे थे। फिर वे कैसे चुप बैठ सकते थे ? वे देश को आजाद कराने की जी-तोड कोशिश करने लगे। अवसर आने पर उसी प्रयत्न मे उन्होने अपने प्राण होम दिये। पर वीर-पूजा ने जो ढोगभरा रूप ले लिया है, वह आजादी मे वाधक होता है। वीर-पूजा का रूप होना चाहिए स्वावलम्बी होने मे जुट जाना। परावलम्बन की चाट जीभ को लगे बिना हम कभी पराधीन नही हो सकते, और जब भी हम उन वीरो की पूजा मे लगते हैं, जिन्होने हमारे देश को आजाद किया। तब हम परावलम्बन की ओर अनजान मे ही दौड पडते हैं। हम स्वावलम्बी होने के स्थान मे ऐसी चीजो मे अपनी शक्ति जुटा देते हैं, जो उस समय को बरबाद कर देती है, जो स्वावलम्बन मे खर्च होता। हम ऐसे निशान खडे कर देते हैं, जिनकी रक्षा मे हमे बेहद शक्ति लगानी पडती है, क्योकि उन निशानो के साथ हम अपनी आबरू का सवाल जो जोड देते हैं। इन सब झझटो से निकलकर जब एक आदमी इन व्यर्थ के अभिमानो को ताक मे रखकर आजादी के लिए किसी देश को खडा कर दे तो उसे चमत्कारी न समझा जाय तो क्या समझा जाय, क्योकि जो काम हमे असम्भव दिखाई देता था, वह उसने पलक मारते कर दिखाया।

और को जाने दीजिये। हम अपने पिजडे के तोते तक को आजाद नही कर सकते, जो खाता ज्यादा है, कभी-कभी किसी बच्चे की अगुली भी काट लेता है, पर मनवहलाव कम करता है। जब ऐसे पक्षी को हम आजाद नही कर सकते तब घोडो, गधो, बैलो को आजाद करने की बात कैसे सोच सकते है ?

ऊँट, हाथी सभी तो हमारे सदा दास रहनेवाले जानवर है। भैस, गाय, बकरी, भेड़, इनकी आज़ादी की बात तो हम स्वप्न मे भी नही सोच सकते, क्योकि हमारा जीवन ही इनपर अवलम्बित है, अर्थात् हम परावलम्बी है। इस परावलम्बन से छूटने के लिए हमे कितने विज्ञान की आवश्यकता होगी, उसका अन्दाजा नही लगाया जा सकता।

जानवरो को आजाद कराने की बात दूर की बात है। अभी तो हमारे लाखो भाई परावलम्बन की कीचड मे फसे हुए है। उनकी सोचे। इस सभ्यता के युग मे बैरिस्टर गाधी चरखा चलाता था और सैकडों बैरिस्टरो, वकीलो, सेठो, पंडितो से चरखा चलवाता था। विद्यार्थियो से बर्तन मजवाता था, और न जाने क्या-क्या करवाता था। सिर्फ मैनचैस्टर की मिलों के अवलम्बन का अन्त करने के लिए, और अचरज है कि मैनचैस्टर की मिले चीख उठीं, तू-तड़ाक पर उतर आईं, लाठी उठा ली, गोली दाग दी, लेकिन चर्खा था कि सदा चलता रहा।

हम मूर्ख ही साबित होंगे अगर घर मे चर्खा और करघा नही रखते और उसके काम से पूरी जानकारी नही रखते, क्योकि हमारी मिले दुश्मन के द्वारा कभी भी एक-दो बम गिराकर नष्ट की जा सकती है। पर हमारे रुपये-दो रुपये और आठ-दस रुपये के चरखो पर कोई हजारों-लाखों बम गिराने की नही सोच सकता।

देश के हर आदमी को स्वावलम्बी बनाना ही स्वाधीन बनाना है। स्वावलम्बन की सीख से लैस कर देना ही स्वाधीनता को हथियार सौप देना है और आजादी का सच्चा

पाठ दे देना है ।

अब आपने समझ लिया होगा कि आजाद होना इतना मुश्किल नही, जितना आजाद करना । अमरीका ने जब नीग्रो गुलामो को आजाद किया था तो गुलाम भी रो रहे थे और मालिक और मालकिन भी रो रहे थे, क्योकि दोनो ही एक-दूसरे पर अवलम्बित थे । जो दास रखता है, वह आजाद नही कहला सकता । जेलखाने मे यह किसने नही देखा कि कैदी पडा खुर्राटे ले रहा होता है और वार्डर घूम-घूमकर पहरा दे रहा होता है । जेलर को प्यारी मीठी नीद को अकेला छोड-कर जेलखाने का चक्कर लगाने आना पडता है । कभी-कभी सुपरिटेडेन्ट को भी । कहिये, अब कैदी ज्यादा सुख मे है या वह, जिसने उसे कैद मे डाल रखा है ?

जिस तरह दासो से मोह छूटना मुश्किल है उसी तरह हुकूमत से मोह छूटना मुश्किल है। पूजा, धन, अधिकार सभी से तो मोह छूटना मुश्किल है । फिर इनके जाल मे फसे हुए सिपाहियो से लेकर सेनापति तक और पटवारी से लेकर मन्त्री तक और मामूली पूजको से लेकर बडे-बडे भक्तो तक की रिहाई कैसे हो सकती है ? मठाधीश और पडे क्या अपने दास बने हुए यजमानो या जिजमानो को कभी रिहा कर सकते है ?

अगर आप आजाद और आत्म-प्रेमी हैं तो आप दूसरो को भी स्वावलम्बी बनाने लगेगे, स्वावलम्बन का पाठ देगे । यह आजाद होने से कठिन काम है, पर ऐसा किये बिना न तो आजादी सुरक्षित रह सकती है, न पूरी कही जा सकती है ।

याद रखिये, अगर आपने सच्चे जी से आजादी को समझ लिया है और अपनेको पहचान लिया है तो आपमे इतनी

शक्ति होनी ही चाहिए कि आपके सम्पर्क-मात्र से आपके साथी स्वावलम्बीपन की सोचे और अगर आप और भी ज्यादा शक्तिशाली है तो आप अपने नगर मे स्वावलम्बन का तूफान उठा सकते है। और भी ज्यादा शक्तिशाली हैं तो देश-भर में स्वावलम्बन की लहर दौड़ा सकते है। विश्वास के साथ लगिये तो आपको सफलता मिलेगी।

: २२ :

आज़ादी के काम में आनन्द मानना

किसीको आजाद होते देखकर या आजाद करके आनन्द मानना आजाद करने-कराने से भी ज्यादा मुश्किल है। जिसे यह अवस्था प्राप्त हो गई, उसे आजादी का सिद्ध ही मानना चाहिए। देखने मे तो ऐसा मालूम होता है कि इस काम मे क्या धरा है। इसमें तो करना-धरना कुछ नहीं है। खुश-ही-खुश होना है। फिर यह कठिनाई किसलिए? अगर चिड़ियाघर के शेर, रीछ, भेडिये आजाद कर दिये जाय तो आप घबरा उठेंगे। आप उस आजादी देनेवाले पर बुरी तरह नाराज हो उठेंगे। उसके खिलाफ अदालत में मुकदमा दायर कर देंगे और फिर आप कहते हैं कि आजादी में आनन्द मानना आसान काम है।

जगली और फाड़-खाऊ जानवरो को छोड़िये। आइये, जेलखाने से चोर और डाकुओं को रिहा किये देते हैं। क्या आप खुश हो सकते हैं? सरकार के खिलाफ एकदम आवाज उठ खड़ी होगी कि यह क्या हो रहा है। राजाओं के जन्म-

दिन पर या आजादी-दिवस पर कुछ कैदी जरूर छोडे जाते हैं, पर वे वे ही होते हैं जो महीने-दो महीने बाद आप ही अपनी कैद पूरी करके छूटने वाले है। इनके छूटने पर जेल के जेलर रो उठते है, क्योकि उनमे से कई कैदी जेल के बडे काम के आदमी बन गये होते है। जिसे जेलखाने का अनुभव है वह जानता है कि जेल का आधा काम जेल के कैदी ही चलाते हैं। बारक के अन्दर का चौकीदार कैदी ही होता है। चौकीदारो की तरह कैदी ओवरसियर और वार्डर भी होते हैं। वे वार्डरो के काम मे हाथ बटाते हैं, कैदियो की देख-भाल करते हैं। जब आम रिहाई होती है तो इन्हीके छूटने का नम्बर आता है। अब जेलर क्यो न रोये ? और वार्डर क्यो न अनमने हो ?

आपने देखा, आजाद होते हुए देखकर आनन्द मानना कितना मुश्किल काम है। अब आपकी समझ मे आ गया होगा कि इस आनन्द से जिसका मन हिलोरे लेने लगे, वही पूर्ण आजाद है, वही पूर्ण मुक्त है, वही सिद्ध है और वही बुद्ध है। पर यह अवस्था प्राप्त होना आसान नही है और आसान है भी। जो पूर्ण-रूपेण स्वावलम्बी है, वह इस अवस्था को अपने-आप प्राप्त कर लेता है।

हम आजाद होने, आजाद करने-कराने और किसी को आजाद होते हुए देखकर, आनन्द मानने की बात पर विस्तार से लिख चुके हैं। अब सिर्फ यह कहना है कि कभी-कभी ये क्रियाए केवल वचन-मात्र से होती हैं। यह अर्थात्, यह कहते सब हैं कि हम आजाद हैं, हम आजाद करते-कराते हैं और

आजादी मे हर्पित होते हैं। पर मन और कृति मे वे इससे कही दूर होते हैं।

आजादी वही है, जिसमे मन, वचन, कर्म तीनों एकरूप हो गये हो। तीनो ही आनन्द मना रहे हो। जो आत्मा की प्रेरणा पर समझ-बूझकर आजादी के लिए मन, वचन, कर्म से जुटता है वही आजाद होता है, वही आजादी के महत्व को जानता है। वही आजादी का मान बढाता है। वह ऐसा हो ही नही सकता कि स्वावलम्वी और स्वाधीन न हो।

जो भी आज़ादी के तत्वो को भली-भाति समझ लेता है, उसके रास्ते में रुकावटे तो आती हैं, पर उन रुकावटों को हटाने मे कोई कठिनाई नही होती। इसका सम्वन्ध किसी विशेप ग्रन्थ के स्वाध्याय से नही है। यह वात कभी-कभी अपने-आप समझ मे आ जाती है और फिर आजादी के सातो तत्व वह स्वय जान जाता है। हो सकता है, उनके नाम उसके अपने हो। यह भी हो सकता है कि उसने अलग-अलग नाम ही न दिये हो। जिस तरह धर्म तत्व को अपढ कवीर-साहव और अपढ मोहम्मदसाहव समझ सकते हैं और जिस तरह राजनीति के तत्व को अपढ हैदरअली और अपढ़ रणजीतसिह समझ सकते हैं, उसी तरह आजादी के तत्व को कोई अपढ़ समझ सकता है। वह अचानक एकदम आजाद हो सकता और आत्मशक्ति को पहचानकर आजादी का झडा खडा कर सकता है। वरसो के गुलाम देश को आज़ाद कर सकता है।